4·2 1/2
वेदों में उषा:
वेद
:- सोहन लाल अग्रवाल

वेदों में उषा का सन्देश, उठो जागो !!

ब्रह्मोपासना एवं गृहस्थधर्म सम्बन्धी
अद्वितीय ऋचाओं का पदार्थ भावार्थ सहित संकलन

संकलनकर्त्ता
सोहन लाल अग्रवाल अधिवक्ता,
पूर्व मन्त्री, आर्य समाज, जबलपुर

मूल्य 40/-

अनुक्रमणिका

प्रकाशक : सोहनलाल अग्रवाल
बी.ए. (आनर्स), एल एल.बी., अधिवक्ता
"वेदसदन" 803 घमापुर,
जबलपुर – 482001.
दूरभाष – 321910.

प्राप्ति स्थानः (1) अग्रवाल ट्रेडर्स,
796 घमापुर, जबलपुर – 482001.

(2) श्रीमति उमा अग्रवाल,
भारत भवन, विकास मार्ग,
10 न्यु राजधानी एन कलेव
देहली – 110092.
दूरभाष – 2242222.
2248788.

प्रथम संस्करणः 1992 1000 प्रतियां.

मुद्रक : रवि प्रिंटर्स, गोरखपुर, जबलपुर.

मूल्य 40/–

समर्पण

स्वर्गीय पिता श्री शालिग्राम जी अग्रवाल की पुण्य स्मृति में समर्पित।

– सोहन लाल अग्रवाल

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्
भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।
(यजुर्वेदः३६/३)

प्राक्कथन

प्रिय पाठक,

वेदों में "उषा" प्रकरणों का सङ्कलन आपके सन्मुख प्रस्तुत है किन्तु "उषा" का शाब्दिक अर्थ भी जानना आवश्यक है। इसका अर्थ आचार्य यास्क ने निरुक्त के अध्याय १२ खंड २ शब्द २ पर बताया है। "उषा" वष्टेः कान्ति कर्मणः उच्छेरितरा माध्यमिका उषस। सूर्योदय से पूर्व की प्रभात बेला बड़ी कमनीय और सुन्दर होती है। जिस प्रकार योद्धा लोग अपने आयुधों को काले पड़ने पर चमकाते हैं उसी प्रकार अन्धकार में डूबे हुए पृथ्वी पर के चराचर जीवों को गतिशील व प्रकाशमान करने का कार्य उषा प्रतिदिन करती है। यही उषा है।

सृष्टि में तीन तत्व हैं। ईश्वर, जीव एवं प्रकृति। ईश्वर जीव के अभ्युदय और निश्श्रेयस् के वास्ते सृष्टि रचता है। एक सृष्टि काल अथवा ब्राह्म दिन चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्ष का होता है जिसके अभी एक अरब, छियानवे करोड़, आठ लाख, तिरेपन हजार, तिरानवे वर्ष बीते हैं और दो अरब, पैंतीस करोड़, इक्यानवे लाख, छियालीस हजार, नौ सो सात वर्ष शेष हैं। सूर्य एवं पृथ्वी अपने अपने कार्य में रत रहते हैं। सूर्य अपने अक्ष पर घूमता है परन्तु चलता नहीं और पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती है तथा सूर्य के चारों ओर चक्कर भी लगाती है। पृथ्वी का वह आधा भाग जो सूर्य की ओर रहता है उसमें दिन होता है और आधा भाग जो सूर्य से परे होता है उसमें अंधेरी रात होती है। दिन ईश्वर ने मनुष्य के कार्य के वास्ते निर्धारित किया है और रात्रि विश्राम के लिए। रात्रि के विश्राम में मनुष्य को जगाने के लिए ईश्वर ने उषा को आदेश दिया हुआ है। वह हर दिन प्रातः अपने प्रकाश को मनुष्य एवं अन्य पशु पक्षियों के मुख पर डालती है और वे प्रबुद्ध होकर अपने अपने कार्य में लग जाते हैं। यदि उषा आगमन का ऐसा ईश्वरीय-प्रबन्ध न होता तो प्राणी कभी जागते ही नहीं परन्तु ब्राह्म दिन की समाप्ति तक "उषा" अपना कार्य करती रहेगी। उषा के सुहावने समय में उठ कर मनुष्य को ईश्वर स्मरण, व्रत, इष्ट सिद्धि, संध्या, यज्ञ करके अपने कार्य में लग जाना चाहिए।

ऋगवेद मं.७ सूक्त ७५ ऋचा १ में परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए सूर्य द्वारा द्यौलोक को प्रकाशित करने पर ब्रह्म-मुहूर्त में ब्रह्मोपासना का विधान

किया गया है। इस सुहावनी बेला में मानव मात्र का कर्त्तव्य है कि वह आलस्य को त्याग कर, परमात्मा की महिमा का अनुभव करते हुए, सत्य के आश्रित होकर प्रभु की उपासना में संलग्न हों तथा याज्ञिक लोक कल्याण हेतु ब्राह्म ज्ञान का उपदेश करें।

ऋ.७-७५-२ में सौभाग्य एवं धन प्राप्ति की प्रार्थना ७-७५-५ में अनादि ऐश्वर्य ऋ. ७-७५-८ में विविध प्रकार के अन्न आदि पदार्थ तथा सुदृढ़ इन्द्रियों वाले पुत्र पौत्रादि प्रदान करने के लिए प्रार्थना की गई है। लोक कल्याण की भावना से ओत प्रोत होकर, वे भगत प्रार्थना करते हैं कि हम बुरे कर्म एवं अपयश से सदैव भयभीत रहें एवं अनुष्ठानी बन कर विश्व कल्याण की ओर उन्मुख हों।

ऋ. ७-७६-१ में सम्पूर्ण ब्रह्मांड के आदि कारण, सम्पूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त सबका उत्पत्ति स्थान क़िन्तु मृत्यु रहित, प्रकाशमान दिव्य गुण स्वरूप परमात्मा का आश्रयण करने का विधान है। इस से आगे वे सम्पूर्ण भुवनों के प्रकाशक और चराचर के चक्षु, विद्वानों को सत्कर्मों की ओर प्रेरित कर उत्तम फल प्रदान करने वाले परमदेव की स्तुति करते हैं।

ऋ. ७-७७-१ एवं ऋ.७-८०-१ में परमात्मा की अनन्त शक्ति द्वारा सृष्टि के शाश्वत क्रम (उत्पत्ति एवं अंत) का वर्णन किया गया है। इस अवधारणा का इससे सुन्दर वर्णन विश्व के किसी और धर्म ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं है।

ऋ.७-७८-१ कण कण में व्याप्त परमात्मा के उस उच्च स्वरूप को दर्शा रहा है जो हर क्षण हमें सृष्टि में उसके विद्यमान होने का भान कराते रहते हैं।

ऋ. ७-७९-४ में सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापी ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि हे भगवन् ! आप हममें ऐसी शक्ति भर दें कि हम कीर्त्तन करते हुए कठिन से कठिन मार्गों के द्वारों को खोलकर आपके दर्शन कर सकें।

वेदों में गृहस्थ धर्म के सन्दर्भ में स्त्री पुरुष व घर के अन्य सदस्यों के क्या कर्त्तव्य हैं, किस प्रकार वे सामर्थ्यानुसार कार्य करते हुए उच्च आदर्शों के अनुरूप, सुखमय, ऐश्वर्यशाली एवं कल्याण कारी जीवन की ओर प्रवृत्त हों, इसका भाव पूर्ण वर्णन इन ऋचाओं में उपलब्ध है।

वृहदारण्यकोपनिषद् में उषा के सम्बन्ध में निम्न भाव उपलब्ध होते हैं –

"उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः।

सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणों व्यात्तमग्निर्वैश्वानरः

संवत्सर आत्मा अश्वस्य मेध्यस्य।।१।।१

अर्थात – विशेष रूप से जानने योग्य संसार का शिर उषा, नेत्र सूर्य, प्राण वायु, मुख वैश्वानर अग्नि है। इस विज्ञातव्य संसार का (आत्मा) शरीर संवत्सर (वर्ष) है।

उपनिषद् में उषा को अश्वरूप सृष्टि का शिर कहते हैं। यह एक सुन्दररूपक प्रतीत होता है। जब से मनुष्य सोकर जागता है तब से लेकर शयनकाल तक एक–एक पदार्थ अध्येतव्य होगा और विशेष कर अध्ययन में शिर से ही सहायता ली जाती है इस हेतु अध्ययन की प्रारम्भावस्था को सूचित करते हुए ऋषियों ने उषा को शिर कहा है।

जैसे शिर में प्रकाश और अप्रकाश दोनों होते हैं क्योंकि बाल्यावस्था में किंचित् प्रकाश तदन्तर धीरे–धीरे ज्ञान रूप प्रकाश आता जाता है वैसा ही प्रथम उषा अप्रकाश रूप में रहती है ज्यों–ज्यों सूर्य का प्रकाश होता जाता है त्यों–त्यों उषा की ज्योति बढ़ती जाती है। यही उषा "सरण्यू" "सूर्या" आदि नाम धारण करती जाती है इसी प्रकार विवेकरूप सूर्य से शिरोरूप उषा जितनी प्रज्वलित होगी उतनी ही शोभा को प्राप्त होती जायेगी। इस हेतु यहाँ उषा और शिर की समानता है।

जब यह ब्रह्माण्ड सर्वथा अज्ञान रूप अंधकार से आवृत था तब इसके विषय में हम लोग कुछ नहीं जानते थे। जब वेद के द्वारा ज्ञान का प्रकाश कुछ–कुछ होने लगा तब से ही जानना आरम्भ किया अतः यहाँ उषा शब्द सृष्टि के ज्ञानाज्ञान दोनों अवस्थाओं का सूचक है।

वेदों में उषा की प्रशंसा बहुत आई है जिनके वर्णन से यह विस्पष्टतया बोध होता है कि प्रभात वेला का नाम उषा है। वेदों के उषा सम्बन्धी ऋचाओं में अन्यान्य बहुत सी शिक्षाएं प्राप्त होती हैं। वेदों में अनित्य वस्तुओं का वर्णन नहीं है इस हेतु प्राकृतिक वस्तुओं के द्वारा ही मनुष्य के सब व्यवहार अनेक प्रकार से दिखलाये गये हैं।

और अब कुछ अपने बारे में–– मैं सातवीं कक्षा से बी.ए. तक संस्कृत का छात्र रहा हूँ और आर्य समाजी होने के नाते वेदाध्ययन भी करता रहा हूँ। इस सन्दर्भ में मैं उल्लेख करना चाहूँगा कि मेरे पास अष्टाध्यायी, संहिताऐं, वैदिक कोष और निरुक्त पर बहुत से ग्रंथ थे जिनका मूल्य लगभग २०,००० रु. आंका गया था। व्याकरण, संहिताऐं, वैदिक कोष और निरुक्त भाष्य मैंने दिनांक ८–५–९० को कन्या पाणिनि महाविद्यालय वाराणसी को भेंट कर दिए तथा शेष ग्रंथ जिनमें मेरा हस्तलिखित साम भाष्य भी था, १५–६–९० को आर्य समाज, नेपियर टाउन, जबलपुर को दे दिए गए हैं। "उषा" की ऋचाओं के संकलन के पूर्व मैंने सामवेद और छान्दोग्योपनिषद् के भाष्य लिखे थे परन्तु वे प्रकाशित न हो सके। यह कार्य

बड़ा कष्ट साध्य था। अब ८१ वर्ष की आयु में ध्यान आया कि कुछ वैदिक शिक्षा, सन्तति के वास्ते भी छोड़ जाऊं सो यह परिश्रम किया है। साधारण जन इस परिश्रम का लाभ उठाऐं और वेद के इन आदेशों को समझ कर जीवन में सफलता प्राप्त करें।

मेरे इस परिश्रम को पुस्तक रूप में लाने में श्री स्वामीदयालसिंह पुस्तकाध्यक्ष आर्यसमाज, नेपियर टाउन, जबलपुर ने बहुत सहायता की है। मैं उनका हृदय से आभार व्यक्त करता हूं। श्री हेमराज आर्य ने हमें अपनी ऋग्वेद संहिता की प्रति उपलब्ध करा कर समयोचित सहायता प्रदान की है, तदर्थ हम उनके बहुत आभारी हैं।

इस सारे आयोजन के अर्थ का प्रबन्ध मेरे कनिष्ट पुत्र स्व. श्री भारतभूषण की धर्मपत्नी श्रीमती उमा अग्रवाल, आर्कीटेक्ट तथा पुत्र, प्राध्यापक श्री सतीशपाल तथा पौत्र श्री वेद अग्रवाल ने किया है। मैं इन सभी को धन्यवाद देता हूं।

रवि प्रिंटिंग प्रेस ने पुस्तक की सुन्दर छपाई की है तथा इस कार्य को कम समय में भली प्रकार से सम्पन्न किया है, उन्हें भी इस हेतु धन्यवाद देता हूं।

आशा है कि पाठकगण रुचि पूर्वक, मनोयोग से इस ग्रंथ का अध्ययन कर लाभान्वित होंगे। मैं कामना करता हूं कि वे उद्यमी बन, अपार ऐश्वर्य को प्राप्त करें और परमात्मा से लग्न लगाते हुए मोक्ष के भागी बनें।

वेद भाष्यकार निम्न मनीषी है।

ऋग्वेदः महर्षि दयानंद ऋ.वे.म. ७ सू ६१ मंत्र ३ तक पं. आर्य मुनि व

पं. शिव शंकर शर्मा – म. ७ का शेप भाग तथा म. ८ एवं ९

पं. बिहारीलाल शास्त्री काव्य व्याकरण तीर्थ म. १०

यजुः महर्षि दयानंद

सामः स्वामी तुलसी राम

अथर्वः प्रो विश्वनाथ विद्यालंकार

विनीत

सोहनलाल अग्रवाल

बी.ए. (आनर्स), एल.एल.बी.

"वेदसदन"

८०३ घमापुर,

जबलपुर

दीपावली

दिनांक २५–१०–९२

कार्तिक अमावस्या सम्वत् २०४९

(१) कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये । कं नक्षसे विभावरि ॥२०॥

पदार्थ--हे विद्याप्रियजन ! जो यह (अमर्त्ये) कारण प्रवाह रूप से नाश-रहित (कधप्रिये) कथनप्रिय (विभावरि) और विविध जगत् को प्रकाश करने वाली, (उषा) प्रातःकाल की वेला (भुजे) सुख भोग कराने के लिए प्राप्त होती है उसको प्राप्त होकर तू (कम्) किस मनुष्य को (नक्षसे) प्राप्त नहीं होता और (कः) कौन (मर्त्तः) मनुष्य (भुजे) सुख भोगने के लिए (ते) तेरे आश्रय को नहीं प्राप्त होता ॥ २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में काक्वर्थ है। कौन मनुष्य इस काल की सूक्ष्म गति जो व्यर्थ खोने के आयोग्य है उसको जाने। जो पुरुषार्थ के आरम्भ का आदि समय प्रातःकाल है उसके निश्चय से प्रातःकाल उठकर, जब तक सोने का समय न हो एक भी क्षण व्यर्थ न खोवे। इस प्रकार समय की सार्थकता को जानते हुए मनुष्य सब काल सुख भोग सकते हैं, किन्तु आलस्य करने वाले नहीं ॥ २० ॥

फिर वह वेला कैसी जाननी चाहिए इस विषय का उपदेश
अगले मन्त्र में किया है—

(2) वयं हि ते अमन्महान्तादा पराकात् । अश्वे न चित्रे अरुषि ॥ २१ ॥

पदार्थ—हे कालविद्यावित् जन ! जैसे (वयम्) समय के प्रभाव को जानने वाले हम लोग जो (चित्रे) आश्चर्यरूप (अरुषि) कुछ एक लाल गुणयुक्त उषा है उस को (आ अन्तात्) प्रत्यक्ष समीप वा (आपराकात्) एक नियम किये हुए दूर देश से (अश्वे) नित्य शिक्षा के योग्य घोड़े पर बैठके जाने-आने वाले के (न) समान (अमन्महि) जानें वैसे इस को तू भी जान ॥ २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जो मनुष्य भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल का यथायोग्य उपयोग लेना जानते हैं उनके पुरुषार्थ से समीप वा दूर के सब कार्य सिद्ध होते हैं । इस से किसी मनुष्य को भी क्षण भर भी व्यर्थ काल न खोना चाहिए ॥ २१ ॥

फिर वह कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(2) त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः । अस्मे रयिं नि धारय ॥२२॥

पदार्थ—हे काल के माहात्म्य को जानने वाले विद्वन् ! (त्वम्) तू जो (दिवः) सूर्य किरणों से उत्पन्न हुई उन की (दुहितः) लड़की के समान प्रात काल की वेला (त्येभिः) अपने उत्तम अवयव अर्थात् दिन-महीना आदि विभागों से वह हम लोगों को (वाजेभिः) अन्न आदि पदार्थों के साथ प्राप्त होती और धनादि पदार्थों की प्राप्ति का निमित्त होती है उस से (अस्मे) हम लोगों के लिए (रयिम्) विद्या सुवर्णादि धनों को (निधारय) निरन्तर ग्रहण कराओ और (आगहि) इस प्रकार विद्या की प्राप्ति कराने के लिए प्राप्त हुआ कीजिए कि जिससे हम लोग भी समय को निरर्थक न खोवें ॥ २२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य काल को व्यर्थ नहीं खोते उन का सब काल सब कामों की सिद्धि करनेवाला होता है ॥ २२ ॥

इस मन्त्र में पिछले सूक्त के अनुषंगी "इन्द्र, अश्वि और उषा" समय के वर्णन से पिछले सूक्त के अनुषंगी अर्थों के साथ इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति जाननी चाहिए ।

(१) सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥ १ ॥

पदार्थ—हे (दिवः) सूर्यप्रकाश की (दुहितः) पुत्री के समान (उषः) उषा के तुल्य वर्त्तमान (विभावरि) विविध दीप्तियुक्त (देवि) विद्या सुशिक्षाओं से प्रकाशमान् कन्या (दास्वती) प्रशस्त दानयुक्त ! तू (बृहता) बड़े (वामेन) प्रशंसित प्रकाश (द्युम्नेन) न्यायप्रकाश के सहित (राया) विद्या चक्रवर्त्ति राज्यलक्ष्मी के (सह) सहित (नः) हम लोगों को (व्युच्छ) विविध प्रकार प्रेरणा कर ॥ १ ॥

भावार्थ—यहाँ वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे कोई स्वामी भृत्य को वा भृत्य स्वामी को सचेत कर व्यवहारों में प्रेरणा करता है और जैसे उषा अर्थात् प्रातःकाल की वेला प्राणियों को पुरुषार्थ युक्त कर बड़े-बड़े पदार्थ समूह वा सुख से युक्त कर आनन्दित तथा सायंकाल में सब व्यवहारों से निवृत्त कर आरामस्थ करती है वैसे ही माता, पिता, विद्या और अच्छी शिक्षा आदि व्यवहारों में अपनी कन्याओं को प्रेरणा करें ॥ १ ॥

फिर वह उषा कैसी और क्या करती है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(२) अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।
उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद राधो मघोनाम् ॥२॥

पदार्थ—हे (उषः) उषा के सदृश स्त्रि ! तू जैसे यह शुभ गुणयुक्ता उषा है वैसे (अश्वावतीः) प्रशंसनीय व्याप्तियुक्त (गोमतीः) बहुत गो आदि पशु सहित (विश्वसुविदः) सब वस्तुओं को अच्छे प्रकार जानने वाली (सूनृताः) अच्छे प्रकार प्रियादियुक्त वाणियों को (वस्तवे) सुख में निवास के लिए (भूरि) बहुत (उदीरय) प्रेरणा कर और जो व्यवहारों से (च्यवन्त) निवृत्त होते हैं उन को (मघोनाम्) धनवानों के सकाश से (राधः) उत्तम-से-उत्तम धन को (चोद) प्रेरणा, कर उन से (मा) मुझे (प्रति) आनन्दित कर ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अच्छी शोभायमान उषा सब प्राणियों को सुख देती है वैसे स्त्रियाँ अपने पतियों को निरन्तर सुख दिया करें ॥ २ ॥

फिर वह कैसी हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(6) उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम् ।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥३॥

पदार्थ—जो स्त्री उषा के समान (जीरा) वेगयुक्त (देवी) सुख देने वाली (रथानाम्) आनन्ददायक यानों के मध्य (उवास) वसती है (ये) जो (अस्याः) इस सती स्त्री के (आचरणेषु) धर्म्मयुक्त आचरणों में (समुद्रे, न) जैसे सागर में (श्रवस्यवः) अपने आप विद्या के सुनने वाले विद्वान् लोग उत्तम नौका से जाते-आते हैं वैसे (दध्रिरे) प्रीति को धरते हैं वे पुरुष अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिस को अपने समान विदुषी और सर्वथा अनुकूल स्त्री मिलती है वह सुख को प्राप्त होता है और नहीं ॥ ३ ॥

जो प्रभात समय में योगाभ्यास करते हैं वे किसको प्राप्त होते हैं
इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(7) उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।
अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! जो (सूरयः) स्तुति करने वाले विद्वान् लोग (ते) आप से उपदेश पाके (अत्र) इस (उषः) प्रभात के (यामेषु) प्रहरों में (दानाय) विद्यादि दान के लिए (मनः) विज्ञानयुक्त चित्त को (प्रयुञ्जते) प्रयुक्त करते हैं वे जीवन्मुक्त होते हैं और जो (कण्वः) मेधावी (एषाम्) इन (नृणाम्) प्रधान विद्वानों के (नाम) नामों को (गृणाति) प्रशंसित करता है वह (कण्वतमः) अतिशय मेधावी होता है ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य एकान्त, पवित्र, निरुपद्रव देश में स्थिर होकर यमादि संयमान्त उपासना के नव अंगों का अभ्यास करते हैं वे निर्मल आत्मा होकर ज्ञानी, आप्त और सिद्ध होते हैं और जो इनका संग और सेवा करते हैं वे भी शुद्ध अन्तःकरण होके आत्मयोग के जानने के अधिकारी होते हैं ॥ ४ ॥

फिर वह उषा क्या करती है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(8) आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥५॥३॥

पदार्थ—जो (योषेव) सत्स्त्री के समान (प्रभुञ्जती) अच्छे प्रकार भोगती (सूनरी) अच्छे प्रकार प्राप्त होती (जरयन्ती) जीर्णावस्था को करती (उषा) प्रातः समय (पद्वत्) पगों के तुल्य (वृजनम्) मार्ग को (ईयते) प्राप्त होती हुई (याति) जाती और (पक्षिणः) पक्षियों को (उत्पातयति) उड़ाती है उस काल में सब को योगाभ्यास (घ) ही करना चाहिए ॥ ५ ॥

भावार्थ—जैसे प्रातः काल की वेला निर्मल तथा सब प्रकार से सुख की देने वाली, योगाभ्यास का कारण है उसी प्रकार स्त्रियों को होना चाहिए ॥ ५ ॥

फिर वह कैसी हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(९) वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती ।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवती ॥६॥

पदार्थ—हे योगाभ्यास करनेहारी स्त्रि ! आप जैसे (या) जो (ओदती) आर्द्रता को करती हुई (नकिः) शब्द को न करती (वाजिनीवती) बहुत क्रियाओं का निमित्त (उषः) प्रातः समय (अर्थिनः) प्रशस्त अर्थ वाले का (पदं न) प्राप्ति के योग्य के समान (समनम्) सुन्दर संग्राम को जैसे (विवेति) व्याप्त होती है जिस की (व्युष्टौ) दहन करने वाली कान्ति में (पप्तिवांसः) पतनशील (वयः) पक्षी (आसते) स्थिर होते हैं वह वेला (ते) तेरे योगाभ्यास के लिए है, इसको तू जान ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे स्त्रियाँ व्यवहार से अपने पदार्थों को प्राप्त होती हैं वैसे उषा अपने प्रकाश से अधिकार को प्राप्त होती हैं जैसे वह दिन को उत्पन्न और सब प्राणियों को उठाकर अपने-अपने व्यवहार में प्रवर्त्तमान कर रात्रि को निवृत्त करती और दिन के होने से दाह को भी उत्पन्न करती है वैसे ही सब स्त्रियों को भी होना चाहिए ॥ ६ ॥

फिर उषा के समान स्त्रियां हों इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(१०) एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥७॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! जैसे (एषा) यह (उषाः) प्रातः काल (परावतः) दूर देश से (सूर्यस्य) सूर्यमण्डल के (उदयनात्) उदय से (अधि) उपरान्त (अभ्यस्म्ययुक्त) ऊपर से, सम्मुख से सब में युक्त होती है जिस प्रकार (इयम्) यह (सुभगा) उत्तम एश्वर्य्ययुक्त (रथेभिः) रमणीय यानों से (शतम्) असंख्यात (मानुषान्) मनुष्यादिकों को (वियाति) विविध प्रकार प्राप्त होती है वैसे तुम भी युक्त होओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे पतिव्रता स्त्रियाँ नियम से अपने पतियों की सेवा करती हैं । जैसे उषा से सब पदार्थों का दूर देश से संयोग होता है वैसे दूरस्थ कन्या, पुत्रों का युवावस्था में स्वयंवर विवाह करना चाहिए जिससे दूर देश में रहनेवाले मनुष्यों से प्रीति बढ़े । जैसे निकटस्थों का विवाह दुःखदायक होता है वैसे ही दूरस्थों का विवाह आनन्दप्रद होता है ॥ ७ ॥

फिर वह कैसी हो इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(११) विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः ॥८॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! तुम जैसे (मघोनी) प्रशंसनीय धननिमित्त (सूनरी) अच्छे प्रकार प्राप्त करनेवाली (दिवः) प्रकाशमान् सूर्य्य की (दुहिता) पुत्री के सदृश (उषाः) प्रकाशने वाली प्रभात की वेला (विश्वम्) सब जगत् को (चक्षसे) देखने के लिए (ज्योतिः) प्रकाश को (कृणोति) करती है और (स्रिधः) हिंसक (द्वेषः) द्वेष करनेवाले शत्रुओं को (अपोच्छत्) दूर करती है वैसे पति आदिकों में वर्त्तो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सती स्त्री विघ्नों को दूर कर कर्त्तव्य कर्मों को सिद्ध करती हैं, वैसे ही उषा डाकू, चोर, शत्रु आदि को दूर कर कार्य्य की सिद्धि करानेवाली होती है ॥ ८ ॥

फिर वह कैसी होके क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(११) उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।

आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥९॥

पदार्थ—हे (दिवः) सूर्य्य के प्रकाश की (दुहितः) पुत्री के तुल्य कन्ये ! जैसे (उषाः) प्रकाशमान् उषा (भानुना) सूर्य्य और (चन्द्रेण) चन्द्रमा से (अस्मभ्यम्) हम पुरुषार्थी लोगों के लिए (भूरि) बहुत (सौभगम्) ऐश्वर्य्य के समूहों को (आवहन्ती) सब ओर से प्राप्त कराती (दिविष्टिषु) प्रकाशित क्रान्तियों में (व्युच्छन्ती) निवास कराती हुई संसार को प्रकाशित करती हैं वैसे ही तू विद्या और शमादि से (आ भाहि) सुशोभित हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विदुषी धार्मिक कन्या माता और पिता दोनों के कुलों को उज्ज्वल करती है वैसे उषा स्थूल, सूक्ष्म अर्थात् बड़ी-छोटी दोनों तरह की वस्तुओं को प्रकाशित करती है ॥ ९ ॥

फिर वह उषा कैसी होकर किससे क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(१२) विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि ।

सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥१०॥४॥

पदार्थ—हे (सूनरि) अच्छे प्रकार व्यवहारों को प्राप्त (विभावरि) विविध प्रकाशयुक्त (चित्रामघे) चित्र-विचित्र धन से सुशोभित स्त्रि ! जैसे उषा (बृहता) बड़े (रथेन) रमणीय स्वरूप वा विमानादि यान से विद्यमान, जिसमें (विश्वस्य) सब प्राणियों के (प्राणनम्) प्राण और (जीवनम्) जीविका की प्राप्ति का सम्भव होता है वैसे ही (त्वे) तेरे में होता है (यत्) जो तू (नः) हम लोगों को (व्युच्छसि) विविध प्रकार वास करती है वह तू हमारे (हवम्) सुनने-सुनाने योग्य वाक्यों को (श्रुधि) सुन ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे उषा से सब प्राणिमात्र को सुख होते हैं वैसे ही पतिव्रता स्त्री से प्रसन्न पुरुष को सब आनन्द होते हैं ॥ १० ॥

फिर वह कैसा है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(७४) उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥११॥

पदार्थ—हे (उषः) प्रभात वेला के तुल्य वर्त्तमान स्त्रि ! तू (यः) जो (चित्रः) अद्भुत गुण, कर्म, स्वभावयुक्त (सुकृतः) उत्तम कर्म करनेवाला तेरा पति है उस (मानुषे, जने) विद्या, धर्मादि गुणों से प्रसिद्ध मनुष्य में (वाजम्) ज्ञान वा अन्न को (हि) निश्चय करके (वंस्व) सम्यक् प्रकार से सेवन कर (ये) जो (वह्नयः) प्राप्ति करनेवाले विद्वान् मनुष्य जिस कारण से (अध्वरान्) अध्वर, यज्ञ वा अहिंसनीय विद्वानों की (उपगृणन्ति) अच्छे प्रकार स्तुति करते और तुझको उपदेश करते हैं (तेन) उससे उनको (आवह) सुखों को प्राप्त कराती रह ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य जैसे सूर्य उषा को प्राप्त होके दिन को कर सब को सुख देता है वैसे अपनी स्त्रियों को भूषित करते हैं उनको स्त्रियाँ भूषित कर इस प्रकार परस्पर प्रीति उपकार से सदा सुखी रहें ॥ ११ ॥

फिर वह क्या करे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(७५) विश्वान्देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य१मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥१२॥

पदार्थ—हे (उषः) प्रभात वेला के तुल्य स्त्रि ! मैं (सोमपीतये) सोम आदि पदार्थों को पीने के लिए (अन्तरिक्षात्) ऊपर से (विश्वान्) अखिल (देवान्) दिव्य गुणयुक्त पदार्थों और जिस तुझको प्राप्त होता हूँ उन्हीं को तू भी (आवह) अच्छे प्रकार प्राप्त हो, हे (उषः) उषा के समान हित करने और (सा) तू (सब) इष्ट पदार्थों को प्राप्त करानेवाली (अस्मासु) हम लोगों में (गोमत्) इन्द्रिय, किरण और पृथिवी आदि से (अश्वावत्) और अत्युत्तम तुरंगों से युक्त (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्य्य पराक्रमकारक (वाजम्) विज्ञान वा अन्न को (धाः) धारण कर ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे यह उषा अपने प्रादुर्भाव से शुद्ध वायु, जल प्रकाश आदि दिव्य गुणों को प्राप्त कराके दोषों का नाश कर सब उत्तम पदार्थ समूह को प्रकट करती है वैसे उत्तम स्त्री गृह कार्य्य में हो ॥१३॥

फिर वह कैसी होकर क्या देवे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(७६) यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥१३॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! (यस्याः) जिस के सकाश से ये (रुशन्तः) चोर, डाकू अन्धकार आदि का नाश और (भद्राः) कल्याण करनेवाली (अर्चयः) दीप्ति (प्रत्यदृक्षत) प्रत्यक्ष होती है सा) जैसे वह (उषा) सुरूप के देनेवाली

प्रभात की वेला (नः) हम लोगों के लिए (विश्ववारम्) सब आच्छादन करने योग्य (सुपेशसम्) शोभनरूपयुक्त (रयिम्) चक्रवर्त्ति राज्यलक्ष्मी (सुम्यम्) सुख को (ददाति) देती है वैसे होकर तू भी हम को सुखदायक हो ।। १३ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे दिन की निमित्त उषा के विना सुख से कार्य्य सिद्ध नहीं होते और स्वरूप की प्राप्ति भी नहीं होती वैसे ही सती स्त्री के विना यह सब नहीं होता ।। १३ ।।

फिर वह किस प्रयोजन के लिए समर्थ होती है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(७६)

ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्वं ऊतये जुहुरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ।।१४।।

पदार्थ—हे उषा के तुल्य वर्त्तमान (महि) महागुणविशिष्ट पण्डिता स्त्रि ! (ये) जो (पूर्वे) अध्ययन किये हुए वेदार्थ के जाननेवाले विद्वान् लोग (ऊतये) अत्यन्त गुण प्राप्ति वा (अवसे) रक्षण आदि प्रयोजन के लिए (त्वाम्) तुझे (जुहुरे) प्रशंसित करें तो (सा) तू (शुक्रेण) शुद्ध कामों के हेतु (शोचिषा) धर्मप्रकाश से युक्त (राधसा) बहुत धन से (नः) हमारे (चित्) ही (स्तोमान्) स्तुतिसमूहों को (हि) निश्चय से (अभि) सम्मुख होकर (गृणीहि) स्वीकार कर ।। १४ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जिन्होंने वेदों को अध्ययन किया वे पूर्व ऋषि, और जो वेदों को पढ़ते हों उनको नवीन ऋषि जानें, और जैसे विद्वान् लोग पदार्थों को जानकर उपकार लेते हैं वैसे अन्य पुरुषों को भी करना चाहिए। किसी मनुष्य को मूर्खों की चालचलन पर न चलना चाहिए और जैसे विद्वान् लोग अपनी विद्या से पदार्थों के गुणों का प्रकाश कर उपकार करते हैं, जैसे यह उषा अपने प्रकाश से सब पदार्थों को प्रकाशित करती है वैसे ही विदुषी स्त्रियाँ विश्व को सुभूषित करती रहें ।।१५।।

फिर वह क्या करती है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(७८)

उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ।।१५।।

पदार्थ—हे (देवि) दिव्य गुणयुक्त स्त्रि ! जैसे (उषा) प्रभात समय (अद्य) इस दिन में (भानुना) अपने प्रकाश से (द्वारौ) गृहादि वा इन्द्रियों के प्रवेश और निकलने के निमित्त (प्राणंवः) अच्छे प्रकार प्राप्त होती और जैसे (नः) हम लोगों के लिए (यत् अवृकम्) हिंसक प्राणियों से रहित (पृथु) सब ऋतुओं के स्थान और अवकाश के योग्य होने से विशाल (छर्दिः) शुद्ध आच्छादन से प्रकाशमान् घर और जैसे (दिवः) प्रकाशादि गुण (गोमतीः) बहुत ज्ञान किरणों से युक्त (इषः) इच्छाओं को देती है वैसे (वि प्रयच्छतात्) सम्पूर्ण दिया कर ।।१५।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे उषा अपने प्रकाश से अतीत, वर्त्तमान और आनेवाले दिनों में सब मार्ग और द्वारों को प्रकाश करती है वैसे ही मनुष्यों को चाहिए कि सब ऋतुओं में सुख देनेवाले घरों को रच, उनमें सब भोग्य पदार्थों का स्थापन कर और वह सब स्त्री के अधीन कर प्रति दिन सुखी रहें ॥१५॥

फिर वह किससे क्या दे इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(१९) सन्नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥१६॥५॥

पदार्थ—हे (उषः) प्रातः समय के समतुल्य वर्त्तमान (वाजिनीवति) प्रशंसनीय क्रियायुक्त (महि) पूजनीय विदुषी स्त्रि ! तू जैसे (उषाः) सब रूप को प्रकाश करनेवाली प्रातः समय की वेला (विश्वपेशसा) सब सुन्दर रूपयुक्त (बृहता) बड़े (विश्वतुरा) सब को प्रवृत्त करनेवाले (संद्युम्नेन) विद्या, धर्मादि गुण प्रकाशयुक्त (राया) प्रशंसनीय धन (समिळाभिः) भूमि, वाणी, नीति और (सं वाजैः) अच्छे प्रकार युक्त अन्न, विज्ञान से (नः) हम लोगों को सुख देती है वैसे ही इनसे तू हमें सुख दे ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे विद्वानों की वस्तुएं शिक्षा से उषा के गुण का ज्ञान उससे पुरुषार्थसिद्धि फिर उससे सब सुखों की निमित्त वस्तुएं प्राप्त होती हैं वैसे ही माता की शिक्षा से पुत्र उत्तम होते हैं अन्यथा नहीं ॥१६॥

ऋग्वेदः मं० (१) सू० (४९)

अथास्य चतुर्ऋचस्यैकोनपञ्चाशस्य सूक्तस्य प्रस्कण्व ऋषिः । उषा देवता ।
निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

अब उनचासवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में उषा के दृष्टान्त से स्त्रियों के कर्म का उपदेश किया है—

(२०) उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि ।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥१॥

पदार्थ—हे शुभ गुणों से प्रकाशमान् स्त्रि ! जैसे (उषः) उषा कल्याण-निमित्त (रोचनात्) अच्छे प्रकार प्रकाशमान् से (अधि) ऊपर (भद्रेभिः) कल्याणकारक गुणों से अच्छे प्रकार आती है वैसे ही तू (आगहि) प्राप्त हो और जैसे यह (दिवः) प्रकाश के समीप प्राप्त होती है वैसे ही (त्वा) तुझको (अरुणप्सवः) रक्त गुणविशिष्ट छेदन करके भोक्ता (सोमिनः) उत्तम पदार्थ वाले विद्वान् के (गृहम्) निवास स्थान को (उपवहन्तु) समीप प्राप्त करें ॥१॥

भावार्थ—जिस उषा की, भूमि-संयुक्त सूर्य के प्रकाश से उत्पत्ति है, वह दिन रूप परिणाम को प्राप्त होकर पदार्थों को प्रकाशित करती हुई सबको आह्लादित करती है, वैसे ही ब्रह्मचर्य, विद्या, योग से युक्त स्त्री श्रेष्ठ हो ॥१॥

फिर वह कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(21) सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् ।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥२॥

पदार्थ—हे (दिवः) प्रकाशमान् सूर्य्य की (दुहितः) पुत्री के तुल्य (उषः) वर्त्तमान स्त्रि ! तू (यम्) जिस (सुपेशसम्) सुन्दर रूप (सुखम्) आनन्दकारक (रथम्) क्रीड़ा के साधन यान के (अध्यस्थाः) ऊपर बैठने वाले प्राणी आनन्द को बढ़ाते हैं (तेन) उस रथ से (सुश्रवसम्) उत्तम श्रवणयुक्त (जनम्) विद्वान् मनुष्य की (प्राव) अच्छे प्रकार रक्षा आदि कर ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। मनुष्य लोग जैसे सूर्य्य के प्रकाश से सुरूप की प्रसिद्धि होती है वैसे ही विदुषी स्त्री से घर का काम और पुत्रों की उत्पत्ति होती है—ऐसा जानकर उनसे उपकार लेवें ॥२॥

फिर वह कैसी है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(22) वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥३॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (अर्जुनि) अच्छे प्रकार प्रयत्न का निमित्त (उषः) उषा (दिवः) सूर्य्यप्रकाश से (अन्तेभ्यः) समीप से (ऋतून्) ऋतुओं को सिद्ध और (द्विपत्) मनुष्यादि तथा (चतुष्पत्) पशु आदि का बोध कराती हुई सबको प्राप्त होके जैसे इससे (पतत्रिणः) नीचे-ऊँचे उड़नेवाले (वयः) पक्षी (प्रारन्) इधर-उधर जाते (चित्) वैसे ही (ते) तेरे गुण हों ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे उषा मुहूर्त्त, प्रहर, दिन, मास, ऋतु, अयन अर्थात् दक्षिणायन और वर्षों का विभाग करती हुई सब प्राणियों के व्यवहार और चेतना को विभक्त करती है वैसे ही स्त्री सब गृहकृत्यों को पृथक् पृथक् करें ॥३॥

फिर वह कैसी और क्या करें इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया है—

(23) व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥४॥६॥

पदार्थ—हे (वसूयवः) ! पृथिवी आदि वसुओं को संयुक्त और वियुक्त करनेवाले (कण्वाः) बुद्धिमान् लोग जैसे (उषः) उषा (व्युच्छन्ती) विविध प्रकार से बसाने वाली (हि) निश्चय ही (रश्मिभिः) किरणों से (रोचनम्) रुचिकारक (विश्वम्) सब संसार को (आभासि) अच्छे प्रकार प्रकाशित करती है वैसी (ताम्) उस (त्वाम्) तुझ स्त्री को (गीर्भिः) वेदशिक्षायुक्त अपनी वाणियों से (अहूषत) प्रशंसित करें ॥४॥

भावार्थ—विद्वानों को चाहिए कि उषा के गुणों के तुल्य स्त्री उत्तम होती है इस बात को समझें और सब को उपदेश करें ॥४॥

इसमें उषा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह उनचासवां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

ऋग्वेदः मं० (१) सू० (९२)

अथाऽष्टादशर्चस्य द्विनवतितमस्य सूक्तस्य राहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः । उषा देवता ।
१, २ निचृज्जगती, ३ जगती, ४ विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।
५, ७, १२ विराट् त्रिष्टुप्, ६, १० निचृत्त्रिष्टुप्, ८, ९ त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः । ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।
१३ निचृत्परोष्णिक्:, १४, १५ विराट्परोष्णिक्,
१६—१८ उष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब अठारह ऋचा वाले बानवे सूक्त का प्रारम्भ है । इस के प्रथम मन्त्र से उषस् शब्द के अर्थसम्बन्धी कामों का उपदेश किया है—

(24) एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥१॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो (एताः) देखे जाते (उ) और जो (त्याः) देखे नहीं जाते अर्थात् दूर देश में वर्त्तमान हैं वे (उषसः) प्रातःकाल के सूर्य्य के प्रकाश (केतुम्) सब पदार्थों के ज्ञान को (अक्रत) कराते हैं जो (रजसः) भूगोल के (पूर्वे) आधे भाग में (भानुम्) सूर्य के प्रकाश को (अञ्जते) पहुँचाती और (निष्कृण्वानाः) दिन-रात को सिद्ध करती हैं वे (आयुधानीव) जैसे वीरों की युद्ध विद्या से छोड़े हुए बाण आदि शस्त्र सूधे-तिरछे जाते-आते हैं वैसे (धृष्णवः) प्रगल्भता के गुणों को देने (अरुषीः) लालगुणयुक्त और (मातरः) माता के तुल्य सब प्राणियों का मान करनेवाली (प्रतिगावः) उस सूर्य के प्रकाश के प्रत्यागमन अर्थात् क्रम से घटने-बढ़ने से जगह-जगह में (यन्ति) घटती-बढ़ती से पहुँचती हैं उनको तुम लोग जानो ॥ १ ॥

भावार्थ—इस सृष्टि में सदैव सूर्य का प्रकाश भूगोल के आधे भाग को प्रकाशित करता है और आधे भाग में अन्धकार रहता है । सूर्य के प्रकाश के विना किसी पदार्थ का विशेष ज्ञान नहीं होता । सूर्य की किरणें क्षण-क्षण भूगोल आदि लोकों के घूमने से गमन करती-सी दीख पड़ती हैं जो प्रातःकाल के रक्त प्रकाश अपने-अपने देश में हैं वे प्रत्यक्ष और दूसरे देश में हैं वे अप्रत्यक्ष ये सब प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रातःकाल की वेला सब लोकों में एकसी सब दिशाओं में प्रवेश करती हैं । जैसे शस्त्र आगे-पीछे जाने से सीधी-उलटी चाल को प्राप्त होते हैं वैसे अनेक प्रकार के प्रातः प्रकाश भूगोल आदि लोकों की चाल से सीधी-तिरछी चालों से युक्त होते हैं यह बात मनुष्यों को जाननी चाहिए ॥ १ ॥

फिर वे प्रातःकाल की वेला कैसी हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

(25) उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! जो (अरुणाः) रक्तगुण वाली (स्वायुजः) और अच्छे प्रकार सब पदार्थों से युक्त होती हैं वे (उषसः) प्रातःकालीन सूर्य की (भानवः) किरणें (वृथा) मिथ्या-सी (उत्) ऊपर (अपप्तन्) पड़ती हैं अर्थात् उन में ताप न्यून होता है इससे शीतल-सी होती हैं और उनसे (गाः) पृथिवी आदि लोक (अरुषीः) रक्त गुणों से (अयुक्षत) युक्त होते हैं जो (अरुषीः) रक्त गुणवाली सूर्य की उक्त किरणें (वयुनानि) सब पदार्थों का विशेष ज्ञान वा सब कामों को (अक्रन्) कराती हैं, वे (पूर्वथा) पिछले-पिछले (रुशन्तम्) अन्धकार के छेदक (भानुम्) सूर्य के समान अलग-अलग दिन करनेवाले सूर्य का (अशिश्रयुः) सेवन करती हैं उनका सेवन युक्ति से करना चाहिए ।। २ ।।

भावार्थ—जो सूर्य की किरणें भूगोल आदि लोकों का सेवन अर्थात् उन पर पड़ती हुई क्रम-क्रम से चलती जाती हैं वे प्रातः और सायङ्काल के समय भूमि के संयोग से लाल होकर बादलों को लाल कर देती हैं। और जब ये प्रातःकाल लोकों में प्रवृत्त अर्थात् उदय को प्राप्त होती हैं तब प्राणियों को सब पदार्थों के विशेष ज्ञान होते हैं जो भूमि पर गिरी हुई लाल वर्ण की हैं वे सूर्य के आश्रय होकर उसको लाल कर ओषधियों का सेवन करती हैं उनका सेवन जागरितावस्था में मनुष्यों को करना चाहिए ।। २ ।।

फिर वे क्या करती हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

(26) अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ।।३।।

पदार्थ—सूर्य की किरणें (विष्टिभिः) अपनी व्याप्तियों से (समानेन) समान (योजनेन) योग से अर्थात् सब पदार्थों में एकसी व्याप्त होकर (परावतः) दूर देश से (न) जैसी (नारीः) पुरुषों के अनुकूल स्त्रियां (सुकृते) धर्मिष्ठ (सुदानवे) उत्तम दाता (सुन्वते) ओषधि आदि पदार्थों के रस निकालके सेवन कर्त्ता (यजमानाय) और पुरुषार्थी पुरुष के लिए (विश्वा) समस्त उत्तम-उत्तम (अपसः) कर्मों और (इषम्) अन्नादि पदार्थों को (आवहन्तीः) अच्छे प्रकार प्राप्त करती हुई उन के (अह) दुःखों के विनाश से (अर्चन्ति) सत्कार करती हैं वैसे उषा भी हैं उन का सेवन यथायोग्य सब को करना चाहिए ।। ३ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पतिव्रता स्त्रियाँ अपने-अपने पति का सेवन कर उनका सत्कार करती हैं वैसे ही सूर्य की किरणें भूमि को प्राप्त हुई वहाँ से निवृत्त हो और अन्तरिक्ष में प्रकाश प्रकट कर समस्त वस्तुओं को पुष्ट करके सब प्राणियों को सुख देती हैं ।। ३ ।।

फिर वे कैसी हैं इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

(27) अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ।।४।।

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (उषाः) सूर्य की किरण (नृतूरिव) जैसे नाटक करनेवाला वा नट वा नाचनेवाला या बहुरूपिया अनेक रूप धारण करता है वैसे (पेशांसि) नाना प्रकार के रूपों को (अधिवपते) ठहराती है वा (वक्षः, उस्रेव) जैसे गौ अपनी छाती को वैसे (बर्जहम्) अन्धेरे को नष्ट करनेवाले प्रकाश के नाशक अन्धकार को (अप, ऊर्णुते) ढांपती वा (विश्वस्मै) समस्त (भुवनाय) उत्पन्न हुए लोक के लिए (ज्योतिः) प्रकाश को (कृण्वती) करती हुई (व्रजं, गावो, न) जैसे निवासस्थान को गौ जाती है वैसे स्थानान्तर को जाती और (तमः) अन्धकार को (व्यावः) अपने प्रकाश से ढांप लेती है वैसे उत्तम स्त्री अपने पति को प्रसन्न करे ।। ४ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो सूर्य्य की केवल ज्योति है वह दिन कहाता और जो तिरछी हुई भूमि पर पड़ती है वह (उषा) प्रातःकाल की वेला कहाती है, उसके विना संसार का पालन नहीं हो सकता इससे इस विद्या की भावना मनुष्यों को अवश्य होनी चाहिए ।। ४ ।।

प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम् ।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ।।५।।२४।।

पदार्थ—जिस (अस्याः) इस प्रातः समय अन्धकार के विनाशरूप उषा की (रुशत्) अन्धकार का नाश करनेवाली (अर्चिः) दीप्ति (अभ्वम्) बड़े (कृष्णम्) काले वर्णरूप अन्धकार को (बाधते) अलग करती है जो (दिवः) प्रकाश रूप सूर्य की (दुहिता) पुत्री के तुल्य (स्वरुम्) तपनेवाले सूर्य के (न) समान (चित्रम्) अद्भुत (भानुम्) कान्ति (पेशः) रूप को (अश्रेत्) आश्रय करती है वा जैसे ऋत्विज् लोग (विदथेषु) यज्ञ की क्रियाओं में (अञ्जन्) प्राप्त होते हैं वैसे (वितिष्ठते) विविध प्रकार से स्थिर होती है वह प्रातः समय की वेला हम लोगों को (प्रत्यदर्शि) प्रतीत होती है ।। ५ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य की दीप्ति आप ही उजाला करती हुई सबको प्रकाशित करती है, वह प्रातःकाल की वेला सूर्य्य की पुत्री के समान है ऐसा सब मनुष्यों को मानना चाहिए ।। ५ ।।

फिर वह कैसी है और इससे जीव क्या करता है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ।।६।।

पदार्थ—जो (श्रिये) विद्या और राज्य की प्राप्ति के लिए (छन्दः) वेदों के (न) समान (उच्छन्ती) अन्धकार को दूर करती और (विभाती) विविध प्रकार के मूर्तिमान् पदार्थों को प्रकाशित और (सुप्रतीका) पदार्थों की प्रतीति कराती है वह (उषाः) प्रातःकाल की वेला सबके (सौमनसाय) धार्मिक जनों के मनोरञ्जन के लिए (वयुनानि) प्रशंसनीय वा मनोहर कामों को (कृणोति) कराती (अजीगः) अन्धकार को निगल जाती और (स्मयते) आनन्द देती है उससे (अस्य) इस

(तमसः) अन्धकार के (पारम्) पार को प्राप्त होते हैं वैसे दुःख के परे आनन्द को हम (अतारिष्म) प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को योग्य है कि जैसे यह उषा कर्म, ज्ञान, आनन्द, पुरुषार्थ व धन-प्राप्ति के समान दुःखरूपी अन्धकार के निवारण का निदान प्रातःकाल की वेला है वैसे इस वेला में उत्तम पुरुषार्थ से प्रयत्न करके सुख की बढ़ती और दुःख का नाश करें ॥ ६ ॥

फिर वह कैसी है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

(३०)

भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥७॥

पदार्थ—जैसे (सूनृतानाम्) अच्छे-अच्छे काम वा अन्न आदि पदार्थों को (भास्वती) प्रकाशित (नेत्री) और मनुष्यों को व्यवहारों की प्राप्ति कराती वा (दिवः) प्रकाशमान सूर्य्य की (दुहिता) कन्या के समान (उषः) प्रातः समय की वेला (गोतमेभिः) समस्त विद्याओं को अच्छे प्रकार कहने-सुनने वाले विद्वानों से स्तुति की जाती है वैसे इसकी मैं (स्तवे) प्रशंसा करूँ। हे स्त्रि ! जैसे यह उषा (प्रजावतः) प्रशंसित प्रजायुक्त (नृवतः) वा सेना आदि कामों के बहुत नायकों से युक्त (अश्वबुध्यान्) जिनसे वेगवान् घोड़ों को बार-बार चैतन्य करें (गोअग्रान्) जिनसे राज्य भूमि आदि पदार्थ मिलें उन (वाजान्) संग्रामों को (उपमासि) समीप प्राप्त करती है अर्थात् जैसे प्रातःकाल की वेला से अन्धकार का नाश होकर सब प्रकार के पदार्थ प्रकाशित होते हैं वैसी तू भी हो ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब गुणों से युक्त सुलक्षणी कन्या से पिता, माता सुखी होते हैं वैसे ही प्रातःकाल की वेला के गुण अवगुण प्रकाशित करनेवाली विद्या से विद्वान् लोग सुखी होते हैं ॥७॥

फिर उससे क्या मिलता है और वह क्या करती है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

(३१)

उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥८॥

पदार्थ—जो (वाजप्रसूता) सूर्य की गति से उत्पन्न हुई (सुभगा) जिसके साथ अच्छे-अच्छे ऐश्वर्य के पदार्थ संयुक्त होते हैं वह (उषः) प्रातः समय की वेला है वह जिस (सुदंससा) अच्छे कर्मवाले (श्रवसा) पृथ्वी आदि अन्न के साथ वर्त्तमान वा (अश्वबुध्यम्) जिसकी सहायता से घोड़े सिखाये जाते (दासप्रवर्गम्) जिससे सेवक अर्थात् दास-दासी काम करनेवाले रह सकते हैं (सुवीरम्) जिससे अच्छे सीखे हुए वीरजन हों उस (बृहन्तम्) सर्वदा अत्यन्त बढ़ते हुए और (यशसम्) सब प्रकार प्रशंसायुक्त (रयिम्) विद्या और राज्य धन को (विभासि) अच्छे प्रकार प्रकाशित करती है (तम्) उसको मैं (अश्याम्) पाऊँ ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो लोग प्रातःकाल की वेला के गुण अवगुणों को जताने वाली विद्या से अच्छे-अच्छे यत्न करते हैं वे यह सब वस्तु पाकर सुख से परिपूर्ण होते हैं, दूसरे नहीं ॥ ८ ॥

फिर वह उषा कैसी है यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

(32)

विश्वा॑नि दे॒वी भुव॑नाभि॒चक्ष्या॑ प्रती॒ची चक्षु॑रुर्वि॒या वि भा॑ति ।

विश्वं॑ जी॒वं च॒रसे॒ बो॒धय॑न्ती॒ विश्व॑स्य॒ वाच॑मविदन्मना॒योः ॥९॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (प्रतीची) सूर्य की चाल से परे को ही जाती और (चरसे) व्यवहार करने वा सुख और दुःख भोगने के लिए (विश्वम्) सब (जीवम्) जीवों को (बोधयन्ती) चिताती हुई (देवी) प्रकाश को प्राप्त (उषाः) प्रातःसमय की वेला (मनायोः) मान के समान आचरण करने वाले (विश्वस्य) जीवमात्र की (वाचम्) वाणी को (अविदत्) प्राप्त होती (चक्षुः) और आँखों के समान सब वस्तु के दिखाई पड़ने का निदान (विश्वानि) समस्त (भुवना) लोकों को (अभिचक्ष्य) सब प्रकार से प्रकाशित करती हुई (उर्विया) पृथिवी के साथ (विभाति) अच्छे प्रकार प्रकाशित होती है वैसी तू भी हो ॥९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे सती स्त्री सब प्रकार से अपने पति को आनन्दित करती है वैसे प्रातःकाल की वेला समस्त जगत् को आनन्द देती है ॥९॥

फिर वह उषा कैसी है और क्या करती है इस विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

(33)

पुनः॑पुनर्जा॒यमा॑ना पुरा॒णी स॑मा॒नं वर्ण॑म॒भि शुम्भ॑माना ।

श्व॒घ्नीव॑ कृ॒त्नुर्विज॑ आमिना॒ना मर्त॑स्य दे॒वी ज॒रय॒न्त्यायुः॑ ॥१०॥२५॥

पदार्थ—जो (श्वघ्नीव) कुत्ते और हिरणों को मारनेहारी वृकी के समान वा जैसे (कृत्नुः) छेदन करनेवाली श्येनी (विजः) इधर-उधर चलते हुए पक्षियों का छेदन करती है वैसे (आमिनाना) हिंसिका (मर्त्तस्य) मरने-जीनेहारे जीवमात्र की (आयुः) आयु को (जरयन्ती) हीन करती हुई (पुनः पुनः) दिनोंदिन (जायमाना) उत्पन्न होनेवाली (समानम्) एकसे (वर्णम्) रूप को (अभि शुम्भमाना) सब ओर से प्रकाशित करती हुई वा (पुराणी) सदा से वर्त्तमान (देवी) प्रकाशमान प्रातःकाल की वेला है वह जागरित होके मनुष्यों को सेवने योग्य है ॥१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं । जैसे छिपके वा देखते-देखते भेड़िये की स्त्री वृकी वन के जीवों को तोड़ती और जसे बाजिनी उड़ते हुए पखेरुओं को विनाश करती है वैसे ही यह प्रातःसमय की वेला सोते हुए हम लोगों की आयु को धीरे-धीरे अर्थात् दिनों दिन काटती है ऐसा जान और आलस छोड़कर हम लोगों को रात्रि के चौथे प्रहर में जागके विद्या, धर्म और परोपकार आदि व्यवहारों में नित्य उचित वर्त्ताव रखना चाहिए । जिनकी इस प्रकार की बुद्धि है वे लोग आलस्य और अधर्म्म के बीच में कैसे प्रवृत्त हों ॥१०॥

(३४) व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति ।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ॥११॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो प्रातःकाल की वेला जैसे (योषा) कामिनी स्त्री (जारस्य) व्यभिचारी, लम्पट, कुमार्गी पुरुष की उमर का नाश करे वैसे सब आयु को (सनुतः) निरन्तर (प्रमिनती) नाश करती (स्वसारम्) और अपनी बहिन के समान जो रात्रि है उसको (व्यूर्ण्वती) ढाँपती हुई (अपयुयोति) उसको दूर करती अर्थात् दिन से अलग करता है और आप (वि) अच्छी प्रकार (भाति) प्रकाशित होती जाती है (चक्षसा) उस प्रातःसमय की वेला के निमित्त उससे दर्शन (दिवः) प्रकाशवान् सूर्य्य के (अन्तान्) समीप के पदार्थों को और (मनुष्या) मनुष्यों के सम्बन्धी (युगानि) वर्षों को (अबोधि) जनाती है उसका सेवन तुम युक्ति से किया करो ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । मनुष्यों को चाहिए कि जैसे व्यभिचारिणी स्त्री जारकर्म करनेहारे पुरुष का उमर का विनाश करती है, वैसे सूर्य्य से सम्बन्ध रखनेहारे अन्धकार की निवृत्ति से दिन को प्रसिद्ध करनेवाली प्रातःकाल की वेला है ऐसा जानकर रात और दिन के बीच युक्ति के साथ वर्त्ताव वर्त्तकर पूरी आयु को भोगें ॥११॥

(३५) पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत् ।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्य्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥१२॥

पदार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि (न) जैसे (पशून्) गाय आदि पशुओं को पाकर वैश्य बढ़ता और (न) जैसे (सुभगा) सुन्दर ऐश्वर्य्य करनेहारी (प्रथाना) तरंगों से शब्द करती हुई (सिन्धुः) अति वेगवती नदी (क्षोदः) जल को पाकर बढ़ती है वैसे सुन्दर ऐश्वर्य्य करानेहारी प्रातःसमय चूँ-चाँ करनेहारे पखेरुओं के शब्दों से शब्दवाली और कोसों फैलती हुई (चित्रा) चित्र-विचित्र प्रातःसमय की वेला (उर्विया) पृथिवी के साथ (सूर्यस्य) मार्त्तण्डमण्डल की (रश्मिभिः) किरणों से (दृशाना) जो देखी जाती है वह (अमिनती) सब प्रकार से रक्षा करती हुई (दैव्यानि) विद्वानों में प्रसिद्ध (व्रतानि) सत्य पालन आदि कामों को (व्यश्वैत्) व्याप्त हो अर्थात् जिसमें विद्वान् जन नियमों को पालते हैं वैसे प्रतिदिन अपने नियमों को पालती हुई (चेति) जानी जाती है उस प्रातःसमय की वेला की विद्या के अनुसार वर्त्ताव रखकर निरन्तर सुखी हों ॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है । जैसे पशुओं की प्राप्ति के विना वैश्य लोग वा जल की प्राप्ति के विना नदी-नद आदि अति उत्तम सुख करनेवाले नहीं होते, वैसे प्रातःसमय की वेला के गुण जतानेवाली विद्या और पुरुषार्थ के विना मनुष्य प्रशंसित ऐश्वर्य्यवाले नहीं होते ऐसा जानना चाहिए ॥१२॥

मनुष्यों को इससे क्या जानना चाहिए यह विषय अगले मन्त्र में कहा है—

(३६) उपस्तच्चित्रमा भराऽस्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥१३॥

पदार्थ—हे सौभाग्यकारिणी स्त्रि ! (वाजिनीवति) उत्तम क्रिया और अन्नादि ऐश्वर्य्ययुक्त तू (उषः) प्रभात के तुल्य (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (चित्रम्) अद्‌भुत सुखकर्त्ता धन को (आभर) धारण कर (येन) जिससे हम लोग (तोकम्) पुत्र (च) और इसके पालनार्थ ऐश्वर्य्य (तनयम्) पौत्रादि (च) स्त्री, भृत्य और भूमि के राज्यादि को (धामहे) धारण करें ॥१३॥

भावार्थ—मनुष्यों से प्रातः समय से लेके समय के विभागों के योग्य अर्थात् समय-समय के अनुसार व्यवहारों को करके ही सब सुख के साधन और सुख प्राप्त किये जा सकते हैं, इससे उनको यह अनुष्ठान नित्य करना चाहिए ॥१३॥

फिर वह क्या करती है इस विषय का उपदेश अगले मन्त्रों में किया है—

(३७) उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि ।
रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥ १४ ॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (गोमति) जिसके सम्बन्ध में गौ होती (अश्वावति) घोड़े होते तथा (सूनृतावति) जिसके प्रशंसनीय काम हैं वह (विभावरि) क्षण-क्षण बढ़ती हुई दीप्तिवाली (उषः) प्रातःसमय की वेला (अस्मे) हम लोगों के लिए (रेवत्) जिसमें प्रशंसित धन हों उस सुख को (वि, उच्छ) प्राप्त कराती है उससे हम लोग (अद्य) आज (इह) इस जगत् में सुखों को (धामहे) धारण करते हैं ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में 'धामहे' इस पद की अनुवृत्ति आती है, मनुष्यों को चाहिए कि प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर जब तक फिर न सोवें तब तक अर्थात् दिन भर निरालसता से उत्तम यत्न के साथ विद्या, धन और राज्य तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन पदार्थों को सिद्ध करें ॥१४॥

(३८) युक्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥१५॥२६॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (वाजिनीवति) जिस में ज्ञान वा गमन करानेवाली क्रिया हैं वह (उषः) प्रातःसमय की वेला (अरुणान्) लाल (अश्वान्) चमचमाती फैलती हुई किरणों का (युक्ष्व) संयोग करती है (अथ) पीछे (नः) हम लोगों के लिए (विश्वा) समस्त (सौभगानि) सौभाग्यपन के कामों को अच्छे प्रकार प्राप्त कराती (हि) ही है वैसे (अद्य) आज तू शुभगुणों को युक्त और (आवह) सब ओर से प्राप्त कर ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। प्रतिदिन निरन्तर पुरुषार्थ के विना मनुष्यों को ऐश्वर्य्य की प्राप्ति नहीं होती, इससे उनको चाहिए कि ऐसा पुरुषार्थ नित्य करें जिससे ऐश्वर्य बढ़े ॥१५॥

अथाष्टमोऽध्यायः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ।

अथास्य विंशत्यृचस्य त्रयोदशोत्तरशततमस्य सूक्तस्याङ्गिरसः कुत्स ऋषिः । उषा देवता । द्वितीयस्यार्धर्चस्य रात्रिरपि । १, ३, ९, १२, १७ निचृत्त्रिष्टुप्; ६ त्रिष्टुप्; ७, १८-२० विराट् त्रिष्टुप्, छन्दः । धैवतः स्वरः । २, ५ स्वराट् पङ्क्ति; ४, ८, १०, ११, १५, १६ भुरिक् पङ्क्ति; १३, १४ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब आठवें अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है—

(३९) इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥१॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (प्रसूता) उत्पन्न हुई (रात्री) निशा (सवितुः) सूर्य्य के सम्बन्ध से (सवाय) ऐश्वर्य्य के हेतु (उषसे) प्रातःकाल के लिए (योनिम्) घर-घर को (आरैक्) अलग-अलग प्राप्त होती है वैसे ही (चित्रः) अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाववाला (प्रकेतः) बुद्धिमान् विद्वान् जिस (इदम्) इस (ज्योतिषाम्) प्रकाशकों के बीच (श्रेष्ठम्) अतीवोत्तम् (ज्योतिः) प्रकाश-स्वरूप ब्रह्म को (आ, अगात्) प्राप्त होता है (एव) उसी (विभ्वा) व्यापक परमात्मा के साथ सुखैश्वर्य के लिए (अजनिष्ट) उत्पन्न होता और दुःखस्थान से पृथक् होता है ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्योदय को प्राप्त होकर अन्धकार नष्ट हो जाता है वैसे ही ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होकर दुःख दूर हो जाता है इस से सब मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर को जानने के लिए प्रयत्न किया करें ॥१॥

अब रात्रि और प्रभातवेला के व्यवहार को अगले मन्त्रों में कहा है—

(४०) रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥२॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो यह (रुषद्वत्सा) प्रकाशित सूर्यरूप बछड़े की कामना करनेहारी वा (रुशती) लाल-लालसी (श्वेत्या) शुक्लवर्णयुक्त अर्थात् गुलाबी रङ्ग की प्रभातवेला (आ, अगात्) प्राप्त होती है (अस्याः, उ) इस

अद्भुत उषा के (सदनानि) स्थानों को प्राप्त हुई (कृष्णा) काले वर्णवाली रात (आरैक्) अच्छे प्रकार अलग-अलग वर्त्तती है वे दोनों (अमृते) प्रवाह रूप से नित्य (आमिनाने) परस्पर एक दूसरे को फेंकती हुई सी (अनूची) वर्त्तमान (द्यावा) अपने-अपने प्रकाश से प्रकाशमान (समानबन्धू) दो सहोदर वा दो मित्रों के तुल्य (वर्णम्) अपने-अपने रूप को (चरतः) प्राप्त होती हैं उन दोनों का युक्ति से सेवन किया करो ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जिस स्थान में रात्रि वसती है उसी स्थान में कालान्तर में उषा भी वसती है इन दोनों से उत्पन्न हुआ सूर्य्य जानो दोनों माताओं से उत्पन्न हुए लड़के के समान है और ये दोनों सदा बन्धु के समान जाने-आनेवाली उषा और रात्रि हैं ऐसा तुम लोग जानो ॥२॥

(81) समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥३॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिन (स्वस्रोः) बहनों के समान वर्त्ताव रखने वाली रात्रि और प्रभातवेलाओं का (अनन्तः) अर्थात् सीमारहित आकाश (समानः) तुल्य (अध्वा) मार्ग है जो (देवशिष्टे) परमेश्वर के शासन अर्थात् यथावत् नियम को प्राप्त (विरूपे) विरुद्धरूप (समनसा) तथा समान चित्तवाले मित्रों के तुल्य वर्त्तमान (सुमेके) और नियम में छोड़ी हुई (नक्तोषासा) रात्रि और प्रभातवेला (तम्) उस अपने नियम को (अन्यान्या) अलग-अलग (चरतः) प्राप्त होतीं और वे कदाचित् (न) नहीं (मेथेते) नष्ट होती और (न, तस्थतुः) न ठहरती हैं उनको तुम लोग यथावत् जानो ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विरुद्ध स्वरूपवाले मित्र लोग इस निःसीम, अनन्त आकाश में न्यायाधीश के नियम के साथ ही नित्य वर्त्तते हैं वैसे रात्रि-दिन परमेश्वर के नियम से नियत होकर वर्त्तते हैं ॥३॥

फिर उषा का विषय अगले मन्त्रों में कहा है—

(82) भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति चित्रा वि दुरो न आवः ।
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्यदुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥४॥

पदार्थ—हे विद्वन् मनुष्यो ? तुम लोगों को जो (भास्वती) अतीवोत्तम प्रकाशवाले (सूनृतानाम्) वाणी और जागृत के व्यवहारों को (नेत्री) प्राप्त करने और (चित्रा) अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाववाली (उषाः) प्रभातवेला (नः) हमारे लिए (दुरः) द्वारों (वि, आवः) को प्रकट करती हुई-सी वा जो (नः) हमारे लिए (जगत्) संसार को (प्रार्प्य) अच्छे प्रकार अर्पण करके (रायः) धनों को (वि, अख्यत्) प्रसिद्ध करती है (उ) और (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (अजीगः) अपनी व्याप्ति से निगलती-सी है वह (अचेति) अवश्य जाननी है ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो उषा सब जगत् को प्रकाशित करके सब प्राणियों को जगा, सब संसार में व्याप्त होकर सब पदार्थों को

वृष्टि द्वारा समर्थ करके पुरुषार्थ में प्रवृत्त करा धनादि की प्राप्ति करा माता के समान सब प्राणियों को पालती है इससे आलस्य में उत्तम प्रातः समय की वेला व्यर्थ न गवांनी चाहिए ॥ ४ ॥

(४३) जिह्मश्ये३चरितवे मघोन्याभोगयं इष्टये राय उ त्वम्।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥५॥

पदार्थ—हे विद्वन् ! (त्वम्) तू जो (उर्विया) अनेकरूपयुक्त (मघोनि) अधिक धन प्राप्त करानेहारी (उषाः) प्रातर्वेला (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (अजीगः) निगलती (जिह्मश्ये) वा जो टेढ़े सोने अर्थात् सोने में टेढ़ापन को प्राप्त हुए जन के लिए वा (चरितवे) विचरने को (विचक्षे) विविध प्रकटता के लिए (आभोगये) सब ओर से सुख के भोग जिसमें हों उस पुरुषार्थ से युक्त क्रिया के लिए (इष्टये) वा जिसमें मिलते हैं। उस यज्ञ के लिए वा (राये) धनों के लिए वा (पश्यद्भ्यः) देखते हुए मनुष्यों के लिए (दभ्रम्) छोटे-से (उ) भी वस्तु को प्रकाश करती है उस उषा को जान ॥ ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य रात्रि के चौथे प्रहर में जागकर शयन पर्य्यन्त व्यर्थ समय को नहीं जाने देते वे ही सुखी होते हैं अन्य नहीं ॥ ५ ॥

(४४) क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै।
विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥६॥

पदार्थ—हे विद्वन् सभाध्यक्ष राजन् ! जैसे (उषाः) प्रातर्वेला अपने प्रकाश से (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (अजीगः) ढांक लेती है वैसे (त्वम्) तू (अभिप्रचक्षे) अच्छे प्रकार शास्त्र-बोध से सिद्ध वाणी आदि व्यवहाररूप (क्षत्राय) राज्य के लिए और (त्वम्) तू (श्रवसे) श्रवण और अन्न के लिए (त्वम्) तू (इष्टये) इष्ट सुख और (महीयै) सत्कार के लिए और (त्वम्) तू (इत्यै) सङ्गति प्राप्ति के लिए (विसदृशा) विविध धर्मयुक्त व्यवहारों के अनुकूल (अर्थमिव) द्रव्यों के समान (जीविता) जीवनादि को सदा सिद्ध किया कर ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे विद्या विनय से प्रकाशमान सत्पुरुष सब समीपस्थ पदार्थों को व्याप्त होकर उनके गुणों के प्रकाश से समस्त अर्थों को सिद्ध करनेवाले होते हैं वैसे राजादि पुरुष विद्या, न्याय और धर्मादि को सब ओर से व्याप्त होकर चक्रवर्ती राज्य की यथावत् रक्षा से सब आनन्द को सिद्ध करें ॥ ६ ॥

अब उषा के दृष्टान्त से विदुषी स्त्री के व्यवहार को अगले मन्त्रों में कहा है—

(४५) एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ॥७॥

पदार्थ—जैसे (शुक्रवासाः) शुद्ध पराक्रमयुक्त (विश्वस्य) समस्त (पार्थिवस्य) पृथिवी में प्रसिद्ध हुए (वस्वः) धन की (ईशाना) अच्छे प्रकार सिद्ध करानेवाली (व्युच्छन्ती) और नाना प्रकार के अन्धकारों को दूर करती हुई (एषा) यह (दिवः) सूर्य्य की (युवतीः) जवान अर्थात् अति पराक्रमवाली (दुहिता) पुत्री प्रभातवेला (प्रत्यदर्शि) बार-बार देख पड़ती है वैसे हे (सुभगे) उत्तम भाग्यवती (उषः) सुख में निवास करनेहारी विदुषी ! (अद्य) आज तू (इह) यहां (व्युच्छ) दुःखों को दूर कर ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब ब्रह्मचर्य किया हुआ सन्मार्गस्थ जवान विद्वान् पुरुष अपने तुल्य अपने विद्यायुक्त ब्रह्मचारिणी, सुन्दर रूप, बल, पराक्रमवाली, साध्वी, अच्छे स्वभावयुक्त, सुख देनेहारी युवती अर्थात् बीसवें वर्ष से चौबीसवें वर्ष की आयु युक्त कन्या से विवाह करे तभी विवाहित स्त्री-पुरुष उषा के समान सुप्रकाशित होकर सब सुखों को प्राप्त होवें ॥ ७ ॥

(४८) परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम् ।
व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कं चन बोधयन्ती ॥८॥

पदार्थ—हे उत्तम सौभाग्य बढ़ानेहारी स्त्रि ! जैसे यह (उषाः) प्रभात वेला (शश्वतीनाम्) प्रवाहरूप से अनादिस्वरूप (परायतीनाम्) पूर्व व्यतीत हुई प्रभातवेलाओं के पीछे (आयतीनाम्) आनेवाली वेलाओं में (प्रथमा) पहली (व्युच्छन्ती) अन्धकार का विनाश करती और (जीवम्) जीव को (उदीरयन्ती) कामों में प्रवृत्त कराती हुई (कम्) किसी (चन, मृतम्) मृतक के समान सोये हुए जन को (बोधयन्ती) जगाती हुई (पाथः) आकाश मार्ग को (अन्वेती) अनुकूलता से जाती है वैसे ही तू पतिव्रता हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । सौभाग्य की इच्छा करने वाली स्त्रियाँ उषा के तुल्य भूत, भविष्यत् वर्त्तमान समयों में हुई उत्तमशील पतिव्रता स्त्रियों के सनातन वेदोक्त धर्म का आश्रय कर अपने-अपने पति को सुखी करती और उत्तम शोभावाली होती हुई सन्तानों को उत्पन्न कर और सब ओर से पालन करके उन्हें सत्य विद्या और उत्तम शिक्षाओं का बोध कराती हुई सदा आनन्द को प्राप्त करावें ॥ ८ ॥

(४९) उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्य्यस्य ।
यन्मानुषान् यक्ष्यमाणाँ अजीगस्तद्देवेषु चकृषे भद्रमप्नः ॥९॥

पदार्थ—हे (उषः) प्रभात वेला के समान वर्त्तमान विदुषी स्त्रि ! (यत्) जो तू (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (चक्षसा) प्रकाश से (समिधे) अच्छे प्रकार प्रकाश के लिए (अग्निम्) विद्युत् अग्नि को प्रदीप्त (चकर्थ) करती है वा (यत्) जो तू दुःखों को (वि, आवः) दूर करती वा (यत्) जो तू (यक्ष्यमाणान्) यज्ञ के करनेवाले (मानुषान्) मनुष्यों को (अजीगः) प्राप्त होकर प्रसन्न करती है (तत्) सो तू (देवेषु) विद्वान् पतियों में वसकर (भद्रम्) कल्याण करनेहारे (अप्नः) सन्तानों को उत्पन्न (चकृषे) किया कर ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य की सम्बन्धिनी प्रातःकाल की वेला सब प्राणियों के साथ संयुक्त होकर सब जीवों को सुखी करती है वैसे साध्वी विदुषी स्त्री अपने पतियों को प्रसन्न करती हुईं उत्तम सन्तानों के उत्पन्न करने को समर्थ होती हैं इतर दुष्ट भार्य्या वैसा काम नहीं कर सकतीं ॥ ९ ॥

(४८)

कियात्या यत्समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान् ।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति ॥१०॥

पदार्थ—हे स्त्रि (यत्) जैसे (याः) जो (पूर्वाः) प्रथम गत हुई प्रभात वेला सब पदार्थों को (कियति) कितने (समया) समय (व्यूषुः) प्रकाश करती रहीं (याः, च) और जो (व्युच्छान्) स्थिर पदार्थों की (वावशाना) कामना-सी करती (प्रदीध्याना) और प्रकाश करती हुई (कृपते) अनुग्रह करती (नूनम्) निश्चय से (आ, भवाति) अच्छे प्रकार होती अर्थात् प्रकाश करती उसके तुल्य यह दूसरी विद्यावती विदुषी (अन्याभिः) और स्त्रियों के साथ (जोषमन्वेति) प्रीति को अनुकूलता से प्राप्त होती है वैसे तू मुझ पति के साथ सदा वर्त्ता कर ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। (प्रश्न) कितने समय तक उषःकाल होता है, (उत्तर) सूर्य्योदय से पूर्व पाँच घड़ी उषःकाल होता है (प्रश्न) कौन स्त्री सुख को प्राप्त होती है, (उत्तर) जो अन्य विदुषी स्त्रियों और अपने पतियों के साथ सदा अनुकूल रहती हैं और वे स्त्री प्रशंसा को भी प्राप्त होती हैं जो कृपालु होती हैं वे स्त्री पतियों को प्रसन्न करती हैं। जो पतियों के अनुकूल वर्त्तती हैं वे सदा सुखी रहती हैं ॥ १० ॥

फिर प्रभात विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

(४९)

ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याऽभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥११॥

पदार्थ—(ये) जो (मर्त्यासः) मनुष्य लोग (व्युच्छन्तीम्) जगाती हुई (पूर्वतराम्) अति प्राचीन (उषसम्) प्रभातवेला को (ईयुः) प्राप्त होवें (ते) वे (अस्माभिः) हम लोगों के साथ सुख को (अपश्यन्) देखते हैं जो प्रभातवेला हमारे साथ (प्रतिचक्ष्या) प्रत्यक्ष से देखने योग्य (अभूत्) होती है वह (नु) शीघ्र सुख देनेवाली होती है (उ) और (ये) जो (अपरीषु) आनेवाली उषाओं में व्यतीत हुई उषा को (पश्यान) देखें (ते) वे (ओ) हि सुख को (यन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य उषा के पहले शयन से उठ आवश्यक कर्म करके परमेश्वर का ध्यान करते हैं वे बुद्धिमान् और धार्मिक होते हैं जो स्त्री-पुरुष परमेश्वर का ध्यान करके प्रीति से आपस में बोलते चालते हैं वे अनेकविध सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ११ ॥

फिर उषा के प्रसंग से स्त्रीविषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

(५०) यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥१२॥

पदार्थ—हे (उषः) उषा के समान वर्त्तमान विदुषी स्त्रि ! (यावयद्द्वेषाः) जिसने द्वेषयुक्त कर्म दूर किये (ऋतपाः) सत्य की रक्षक (ऋतेजाः) सत्य व्यवहार में प्रसिद्ध (सुम्नावरी) जिसमें प्रशसित सुख विद्यमान वा (सुमंगलीः) जिनमें सुन्दर मङ्गल होते उन (सूनृताः) वेदादि सत्यशास्त्रों की सिद्धान्तवाणियों को (ईरयन्ती) शीघ्र प्रेरणा करती हुई (श्रेष्ठतमा) अतिशय उत्तम गुण, कर्म और स्वभाव से युक्त (देववीतिम्) विद्वानों की विशेष नीति को (बिभ्रती) धारण करती हुई तू (इह) यहाँ (अद्य) आज (व्युच्छ) दुःख को दूर कर ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रभात वेला अन्धकार का निवारण, प्रकाश का प्रादुर्भाव करा धार्मिकों को सुखी और चोरादि को पीड़ित करके सब प्राणियों को आनन्दित करती है वैसे ही विद्या, धर्म, प्रकाशवती, शमादि गुणों के युक्त विदुषी उत्तम स्त्री अपने पतियों से सन्तानोत्पत्ति करके अच्छी शिक्षा से अविद्यान्धकार को छुड़ा विद्यारूप सूर्य को प्राप्त करा कुल को सुभूषित करें ॥ १२ ॥

(५१) शश्वत्पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः ॥१३॥

पदार्थ—हे ! स्त्रि (पुरा) प्रथम (देवी) अत्यन्त प्रकाशमान (मघोनी) प्रशंसित धन प्राप्त करानेवाली (अजरा) पूर्ण युवावस्थायुक्त (अमृता) रोगरहित (उषाः) प्रभातवेला के समान (उवास) वास कर और (अथो) इसके अनन्तर जैसे प्रभातवेला (उत्तरान्) आगे आनेवाले (अनु, द्यून्) दिनों के अनुकूल (स्वधाभिः) अपने आर धारण किये हुए पदार्थों के साथ (शश्वत्) निरन्तर (वि, चरति) विचरती और अन्धकार को (वि, उच्छात्) दूर करती तथा (अद्य) वर्त्तमान दिन में (इदम्) इस जगत् की (व्यावः) विविध प्रकार से रक्षा करती है वैसे तू हो ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे स्त्रि ! जैसे प्रभात वेला कारण और प्रवाहरूप से नित्य हुई तीनों कालों में प्रकाश करने योग्य पदार्थों का प्रकाश करके वर्त्तमान रहती है वैसे आत्मपन से नित्यस्वरूप तू तीनों कालों में स्थित सत्य व्यवहारों को विद्या और सुशिक्षा से प्रकाश करके पुत्र-पौत्र, ऐश्वर्यादि सौभाग्ययुक्त होके सदा सुखी हो ॥ १३ ॥

(५२) व्यञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ॥१४॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! तुम जैसे (प्रबोधयन्ती) सोतों को जगाती हुई (देवी) दिव्यगुणयुक्त (उषाः) प्रातः समय की वेला (अञ्जिभिः) प्रकट करनेहारे गुणों के साथ (दिवः) आकाश से (आतासु) सर्वत्र व्याप्त दिशाओं में सब पदार्थों को (व्यद्यौत्) विशेष कर प्रकाशित करती (निर्णिजम्) वा निश्चितरूप (कृष्णाम्) कृष्णवर्ण रात्रि को (अपावः) दूर करती वा (अरुणेभिः) रक्तादि गुणयुक्त (अश्वैः) व्यापनशील किरणों के साथ वर्त्तमान (सुयुजा) अच्छे युक्त (रथेन) रमणीय स्वरूप से (आ, याति) आती है उसके समान तुम लोग वर्त्ता करो ।।१४।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे प्रातः समय की वेला दिशाओं में व्याप्त है वैसे कन्या लोग विद्याओं में व्याप्त होवें वा जैसे यह उषा अपनी कान्तियों से शोभायमान होकर रमणीय स्वरूप से प्रकाशमान रहती है वैसे यह कन्याजन अपने शील आदि गुण और सुन्दर रूप से प्रकाशमान हों जैसे यह उषा अन्धकार का निवारण, रूप प्रकाश को उत्पन्न करती है वैसे ये कन्याएँ मूर्खता आदि का निवारण कर सुसभ्यतादि शुभ गुणों से सदा प्रकाशित रहें ।।१४।।

(५३)

आवहंन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिंताना ।
ईयुषीणामुपमा शश्वंतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यंश्वैत् ।।१५।।

पदार्थ—हे स्त्रियो ! तुम जैसे (उषाः) प्रातर्वेला (पोष्या) पुष्टि कराने और (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य धनादि पदार्थों को (आवहन्ती) प्राप्त कराती और (चेकिताना) अत्यन्त चिताती हुई (चित्रम्) अद्भुत (केतुम्) किरण को (कृणुते) करती अर्थात् प्रकाशित करती है (विभातीनाम्) विशेष कर प्रकाशित करती हुई सूर्य्यकान्तियों और (ईयुषीणाम्) चलती हुई (शश्वतीनाम्) अनादि रूप घड़ियों की (प्रथमा) पहली (उपमा) दृष्टान्तरूप (व्यश्वैत्) व्याप्त होती है वैसे ही शुभ गुण कर्मों में (चरत) विचरा करो ।।१५।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग यह निश्चित जानो कि जैसे प्रातःकाल से आरम्भ करके कर्म उत्पन्न होते हैं वैसे स्त्रियों के आरम्भ से घर के कर्म हुआ करते हैं ।।१५।।

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति ।
आरैक्पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ।।१६।।

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जिस उषा की उत्तेजना में (नः) हम लोगों का (जीवः) जीवन का धर्त्ता इच्छादिगुणयुक्त (असुः) प्राण (आ, अगात्) सब ओर से प्राप्त होता (ज्योतिः) प्रकाश (प्र, अगात्) प्राप्त होता (तमः) रात्रि (अप, एति) दूर हो जाती और (यातवे) जाने-आने को (पन्थाम्) मार्ग (अरैक्) अलग प्रकट होता जिससे हम लोग (सूर्याय) सूर्य को (आ, अगन्म) अच्छे प्रकार प्राप्त होते तथा (यत्र) जिसमें प्राणी (आयुः) जीवन को (प्रतिरन्ते) प्राप्त होकर आनन्द से बिताते हैं उसको जानकर (उदीर्ध्वम्) पुरुषार्थ करने में चेष्टा किया करो ।।१६।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे यह प्रातःकाल की उषा सब प्राणियों को जगाती अन्धकार को निवृत्त करती है और जैसे सायंकाल की उषा सबको कार्य्यों से निवृत्त करके सुलाती है अर्थात् माता के समान सब जीवों को अच्छे प्रकार पालन कर व्यवहार में नियुक्त कर देती है वैसे ही सज्जन विदुषी स्त्री होती है ॥१६॥

स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः ।
अद्या तदुच्छ गृणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥१७॥

पदार्थ—हे (मघोनि) प्रशंसित धनयुक्त स्त्रि ! तू (अस्मे) हमारे और (गृणते) प्रशंसा करते हुए (पत्ये) पति के अर्थ जो (प्रजावत्) बहुत प्रजायुक्त (आयुः) जीवन का हेतु अन्न है (तत्) वह (अद्य) आज (नि, दिदीहि) निरन्तर प्रकाशित कर जो तेरा (रेभः) बहुश्रुत (स्तवानः) गुण प्रशंसाकर्त्ता (वह्निः) अग्नि के समान निर्वाह करनेहारा पति तेरे लिए (विभातीः) प्रकाशवती (उषसः) प्रभातवेलाओं को जैसे सूर्य वैसे (स्यूमना) सकल विद्याओं से युक्त प्रिय (वाचः) वेदवाणियों को (उत्, इयर्ति) उत्तमता से जानता है उसको तू (उच्छ) अच्छा निवास कराया कर ॥१७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जब स्त्री-पुरुष सुहृद्भाव से परस्पर विद्या और अच्छी शिक्षाओं को ग्रहण कर उत्तम अन्न, धनादि वस्तुओं का संचय करके सूर्य के समान धर्म-न्याय का प्रकाश कर सुख में निवास करते हैं तभी गृहाश्रम के पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं ॥१७॥

फिर उषःकाल के प्रसंग से स्त्री-पुरुष के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत्सोमसुत्वा ॥१८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! तुम लोग (याः) जो (सूनृतानाम्) श्रेष्ठ वाणी और अन्नादि की (उदर्के) उत्कृष्टता से प्राप्ति में (वायोरिव) जैसे वायु से (गोमतीः) बहुत गौ वा किरणों वाली (उषसः) प्रभातवेला वर्त्तमान हैं वैसे विदुषी स्त्री (दाशुषे) सुख देनेवाले (मर्त्याय) मनुष्य के लिए (व्युच्छन्ति) दुःख दूर करतीं और (अश्वदाः) अश्व आदि पशुओं को देनेवाली (सर्ववीराः) जिनके होते समस्त वीरजन होते हैं (ताः) उन विदुषी स्त्रियों को (सोमसुत्वा) ऐश्वर्य की सिद्धि करनेहारा जन (अश्नवत्) प्राप्त होता है वैसे ही इनको प्राप्त होओ ॥१८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं। ब्रह्मचारी लोगों को योग्य है कि समावर्त्तन के पश्चात् अपने सदृश विद्या, उत्तम शीलता, रूप और सुन्दरता से सम्पन्न हृदय को प्रिय, प्रभातवेला के समान प्रशंसित ब्रह्मचारिणी कन्याओं से विवाह करके गृहाश्रम में पूर्ण सुख करें ॥१८॥

(५६) माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती वि भाहि।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्यु१च्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥१९॥

पदार्थ—हे (विश्ववारे) समस्त कल्याण को स्वीकार करनेहारी कुमारी ! (यज्ञस्य) गृहाश्रम व्यवहार में विद्वानों के सत्कारादि कर्म की (केतुः) जतानेहारी पताका के समान प्रसिद्ध (अदितेः) उत्पन्न हुए सन्तान की रक्षा के लिए (अनीकम्) सेना के समान (प्रशस्तिकृत्) प्रशंसा करने और (बृहती) अत्यन्त सुख की बढ़ानेहारी (देवानाम्) विद्वानों की (माता) जननी हुई (ब्रह्मणे) वेदविद्या वा परमेश्वर के ज्ञान के लिए प्रभातवेला के समान (विभाहि) विशेष प्रकाशित हो (नः) हमारे (जने) कुटुम्बीजन में प्रीति को (आ, जनय) अच्छे प्रकार उत्पन्न किया कर और (नः) हम को सुख में (व्युच्छ) स्थिर कर ॥१९॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सत्पुरुष को योग्य है कि उत्तम विदुषी स्त्री के साथ विवाह करे जिससे अच्छे सन्तान हों और ऐश्वर्य नित्य बढ़ा करें। क्योंकि स्त्री सम्बन्ध से उत्पन्न हुए दुःख के तुल्य इस संसार में कुछ भी बड़ा कष्ट नहीं है उससे पुरुष सुलक्षणा स्त्री की परीक्षा करके पाणिग्रहण करे और स्त्री को भी योग्य है कि हृदय के प्रिय अतीव प्रशंसित रूप गुणवाले पुरुष ही का पाणिग्रहण करे ॥१९॥

(५८) यच्चित्रमप्न उषसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥२०॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (उषसः) उषा के समान स्त्री (शशमानाय) प्रशंसित गुणयुक्त (ईजानाय) संगशील पुरुष के लिए और (नः) हमारे लिए (यत्) जो (चित्रम्) अद्भुत (भद्रम्) कल्याणकारी (अप्नः) सन्तान को (वहन्ति) प्राप्ति करातीं वा जिन स्त्रियों से (मित्रः) सखा (वरुणः) उत्तम पिता (अदितिः) श्रेष्ठ माता (सिन्धुः) समुद्र वा नदी (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौः) विद्युत् वा सूर्यादि प्रकाशमान पदार्थ पालन करने योग्य है उन स्त्रियों वा (तत्) उस सन्तान को निरन्तर (मामहन्ताम्) उपकार में लगाया करो ॥२०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। श्रेष्ठ विद्वान् ही सन्तानों को उत्पन्न अच्छे प्रकार रक्षित और उनकी अच्छी शिक्षा करके उनके बढ़ाने को समर्थ होते हैं जो पुरुष स्त्रियों और जो स्त्री पुरुषों का सत्कार करती हैं उनके कुल में सब सुख निवास करते हैं और दुःख भाग जाते हैं ॥२०॥

इस सूक्त में रात्रि और प्रभात समय के गुणों का वर्णन और इनके दृष्टान्त से स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य कर्म का उपदेश किया है इससे इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ तेरहवां सूक्त और चौथ वर्ग समाप्त हुआ—

पृथुरित्यस्य त्रयोदशर्चस्य त्रयोविंशत्युत्तरशततमस्य सूक्तस्य दीर्घतमसः पुत्रः कक्षीवानृषिः । उषा देवता, १, ३, ६, ७, ६, १०, १३ विराट् त्रिष्टुप्, २, ४, ८, १२ निचृत् त्रिष्टुप्; ५ त्रिष्टुप् च छन्दः । धैवतः स्वरः । ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः

अब एकसौ तेईसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में स्त्री-पुरुष के विषय को कहते हैं—

पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः ।
कृष्णादुदस्थादर्या३ विहाया चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥१॥

पदार्थ—जो (मानुषाय) मनुष्यों के इस (क्षयाय) घर के लिए (चिकित्सन्ती) रोगों को दूर करती हुई (विहायाः) बड़ी प्रशंसित (अर्या) वैश्य की कन्या जैसे प्रातःकाल की वेला (कृष्णात्) अंधेरे से (उदस्थात्) ऊपर को उठती, उदय करती है वैसे विद्वान् ने (अयोजि) संयुक्त की अर्थात् अपने सङ्ग ली और वह (एनम्) इस विद्वान् को पतिभाव से युक्त करती अपना पति मानती तथा जिन स्त्री पुरुषों का (दक्षिणायाः) दक्षिण दिशा से (पृथुः) विस्तारयुक्त (रथः) रथ चलता है उनको (अमृतासः) विनाश रहित (देवासः) अच्छे-अच्छे गुण (आ, अस्थुः) उपस्थित होते हैं ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो प्रातःसमय की वेला के गुणयुक्त अर्थात् शीतल स्वभाववाली स्त्री और चन्द्रमा के समान शीतल गुणवाला पुरुष हो उनका परस्पर विवाह हो तो निरन्तर सुख होता है ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

पूर्वा विश्वस्माद् भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री ।
उच्चा व्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन्प्रथमा पूर्वहूतौ ॥२॥

पदार्थ—(पूर्वहूतौ) जिसमें वृद्धजनों का बुलाना होता उस गृहस्थाश्रम में जो (पुनर्भूः) विवाहे हुए पति के मरजाने पीछे नियोग से फिर सन्तान उत्पन्न करनेवाली होती वह (वाजम्) उत्तम ज्ञान को (जयन्ती) जीतती हुई (बृहती) बड़ी (सनुत्री) सब व्यवहारों को अलग-अलग करने और (प्रथमा) प्रथम (युवतिः) युवा अवस्था को प्राप्त होनेवाली नवोढ़ा स्त्री जैसे (उषाः) प्रातःकाल की वेला (विश्वस्मात्) समस्त (भुवनात्) जगत् के पदार्थों से (पूर्वा) प्रथम (अबोधि) जानी जाती और (उच्चा) ऊंची-ऊंची वस्तुओं को (वि, अख्यत्) अच्छे प्रकार प्रकट करती वैसे (आ, अगन्) आती है वह विवाह में योग्य होती है ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जब कन्या पच्चीस वर्ष अपनी आयु को विद्या के अभ्यास करने में व्यतीत कर पूरी विद्यावाली होकर अपने समान पति से विवाह कर प्रातःकाल की वेला के समान अच्छे रूपवाली हों ॥ २ ॥

(६१) यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥३॥

पदार्थ—हे (सुजाते) उत्तम कीर्त्ति से प्रकाशित और (देवि) अच्छे लक्षणों से शोभा को प्राप्त सुलक्षणी कन्या! तू (अद्य) आज (नृभ्यः) व्यवहारों की प्राप्ति करानेहारे मनुष्यों के लिए (उषः) प्रातःसमय की वेला के समान (यत्) जिस (भागम्) सेवने योग्य व्यवहार का (विभजासि) अच्छे प्रकार सेवन करती और जो (अत्र) इस गृहाश्रम में (दमूनाः) मित्रों में उत्तम (मर्त्यत्रा) मनुष्यों में (सविता) सूर्य के समान (देवः) प्रकाशमान तेरा पति (सूर्याय) परमात्मा के विज्ञान के लिए (नः) हम लोगों को (अनागसः) विना अपराध के व्यवहारों को (वोचति) कहे उन तुम दोनों का सत्कार हम लोग निरन्तर करें ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जब दो स्त्री-पुरुष विद्यावान्, धर्म का आचरण और विद्या का प्रचार करनेहारे सदा परस्पर प्रसन्न हों तब गृहाश्रम में अत्यन्त सुख का सेवन करनेहारे होवें ॥३॥

(६२) गृहंगृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दधाना ।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वसूनाम् ॥४॥

पदार्थ—जो स्त्री जैसे प्रातःकाल की वेला (अहना) दिन वा व्याप्ति से (गृहंगृहम्) घर-घर को (अच्छाधियाति) उत्तम रीति के साथ अच्छी ऊपर से आती (दिवेदिवे) और प्रतिदिन (नाम) नाम (दधाना) धरती अर्थात् दिन-दिन का नाम आदित्यवार, सोमवार आदि धरती (द्योतना) प्रकाशमान (वसूनाम्) पृथिवी आदि लोकों के (अग्रमग्रम्) प्रथम-प्रथम स्थान को (भजते) भजती और (शश्वत्) निरन्तर (इत्) ही (आ, आगात्) आती है वैसे (सिषासन्ती) उत्तम पदार्थ पति आदि को दिया चाहती हो वह घर के काम को सुशोभित करनेहारी हो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य की कान्ति—घाम सब पदार्थों के अगले-अगले भाग को सेवन करती और नियम से प्रत्येक समय प्राप्त होती है वसे स्त्री को भी होना चाहिए ॥ ४ ॥

(६३) भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व ।
पश्चा स दध्या यो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन ॥५॥

पदार्थ—हे (सूनृते) सत्य आचरणयुक्त स्त्रि ! तू (उषः) प्रातः समय की वेला के समान वा (भगस्य) ऐश्वर्य की (स्वसा) बहिन के समान वा (वरुणस्य) उत्तम पुरुष की (जामिः) कन्या के समान (प्रथमा) प्रख्याति प्रशंसा को प्राप्त हुई विद्याओं की (जरस्व) स्तुति कर (यः) जो (अघस्य) अपराध का (धाता) धारण करनेवाला हो (तम्) उसको (दक्षिणया) अच्छी सिखाई हुई सेना और (रथेन) विमान आदि यान से जैसे हम लोग (जयेम)

जीतें वैसे तू (वध्याः) उसका तिरस्कार कर जो मनुष्य पापी हो (सः) वह (पश्चा) पीछा करने अर्थात् तिरस्कार करने योग्य है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। स्त्रियों को चाहिए कि अपने-अपने घर में ऐश्वर्य की उन्नति श्रेष्ठ रीति और दुष्टों का ताड़न निरन्तर किया करें ॥ ५ ॥

(६८) उदी॑रतां सू॒नृता॒ उत्पुर॑न्धी॒रुद॒ग्नयः॑ शुशुचा॒नासो॑ अस्थुः ।
स्पा॒र्हा वसू॑नि॒ तम॒साप॑गूळ्हा॒विष्कृ॑ण्वन्त्यु॒षसो॑ विभा॒तीः ॥६॥

पदार्थ—हे सत्पुरुषो ! (सूनृताः) सत्यभाषणादि क्रियावान् होते हुए तुम लोग जैसे (पुरन्धीः) शरीर के आश्रित क्रिया को धारण करती और (शुशुचानासः) निरन्तर पवित्र करानेवाले (अग्नयः) अग्नियों के समान चमकती-दमकती हुई स्त्रियाँ (उदीरताम्) उत्तमता से प्रेरणा देवें वा (स्पार्हा) चाहने योग्य (वसूनि) धन आदि पदार्थों को (उदस्थुः) उन्नति से प्राप्त हों वा जैसे (उषसः) प्रभातसमय (तमसा) अन्धकार से (अपगूळ्हा) ढँपे हुए पदार्थों और (विभातीः) अच्छे प्रकाशों को (उदाविष्कृण्वन्ति) ऊपर से प्रकट करते हैं वैसे होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जब स्त्रियाँ प्रभात समय की वेलाओं के समान वर्त्तमान अविद्या, मैलापन आदि दोषों को निरासे कर विद्या और पाकपन आदि गुणों को प्रकाश कर ऐश्वर्य की उन्नति करती हैं तब वे निरन्तर सुखयुक्त होती हैं ॥ ६ ॥

(६९) अपा॒न्यदे॒त्यभ्य१॒॑न्यदे॑ति॒ विषु॑रूपे॒ अह॑नी॒ सं च॑रेते ।
परि॑क्षि॒तोस्तमो॑ अ॒न्या गुहा॑कर॒द्यौदु॒षाः शोशु॑चता॒ रथे॑न ॥७॥

पदार्थ—जो (विषुरूपे) संसार में व्याप्त (अहनी) रात्रि और दिन एक साथ (सं, चरेते) सञ्चार करते अर्थात् आते-जाते हैं उनमें (परिक्षितोः) सब ओर से वसनेहारे अन्धकार और उजाले के बीच से (गुहा) अन्धकार से संसार को ढाँपनेवाली (तमः) रात्रि (अन्या) और कामों को (अकः) करती तथा (उषाः) सूर्य के प्रकाश से पदार्थों को तपानेवाला दिन (शोशुचता) अत्यन्त प्रकाश और (रथेन) रमण करने योग्य रूप से (अद्यौत्) उजाला करता (अन्यत्) अपने से

भिन्न प्रकाश को (अप, एति) दूर करता तथा (अन्यत्) अन्य प्रकाश को (अभ्येति) सब ओर से प्राप्त होता इस व्यवहार के समान स्त्री-पुरुष अपना वर्त्ताव वर्त्ते ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। इस जगत् में अन्धेरा, उजाला दो पदार्थ हैं जिनसे सदैव पृथिवी आदि लोकों के आधे भाग में दिन और आधे में रात्रि रहती है। जो वस्तु अन्धकार को छोड़ता वह उजाले का ग्रहण करता और जितना प्रकाश अन्धकार को छोड़ता उतना रात्रि लेती दोनों पारी से सदैव अपनी व्याप्ति के साथ पाये-पाये हुए पदार्थ को ढाँपते और दोनों एक साथ वर्त्तमान हैं उनका जहाँ-जहाँ संयोग है वहाँ-वहाँ संध्या और जहाँ-जहाँ वियोग होता अर्थात् अलग होते वहाँ-वहाँ रात्रि और दिन होता जो स्त्री-पुरुष ऐसे मिल और अलग होकर दुःख के कारणों को छोड़ते और सुख के कारणों को ग्रहण करते वे सदैव आनन्दित होते हैं ॥ ७ ॥

सदृशीर॒द्य स॒दृशी॒रिदु॒ श्वो दी॒र्घं स॑चन्ते॒ वरु॑णस्य॒ धाम॑ ।
अ॒न॒व॒द्यास्त्रि॒ंशतं॒ योज॑ना॒न्येकै॑का॒ क्रतुं॒ परि॑ यन्ति स॒द्यः ॥८॥

पदार्थ—जो (अद्य) आज के दिन (अनवद्याः) प्रशंसित (सदृशीः) एकसी (उ) अथवा तो (श्वः) अगले दिन (सदृशीः) एकसी रात्रि और प्रभात वेला (वरुणस्य) पवन के (दीर्घम्) बड़े समय वा (धाम) स्थान को (सचन्ते) संयोग को प्राप्त होती और (एकैका) उनमें से प्रत्येक (त्रिंशतम्, योजनानि) एकसौ बीस कोश और (क्रतुम्) कर्म को (सद्यः) शीघ्र (परि, यन्ति) पर्य्याय से प्राप्त होती हैं वे (इत्) व्यर्थ किसी को न खोना चाहिए ॥ ८ ॥

भावार्थ—जैसे ईश्वर के नियम को प्राप्त हो गये, होते और होनेवाले रात्रि, दिन हैं उनका अन्यथापन नहीं होता वैसे ही इस सब संसार के क्रम का विपरीत भाव नहीं होता तथा जो मनुष्य आलस को छोड़, सृष्टिक्रम की अनुकूलता से अच्छा यत्न किया करते हैं वे प्रशंसित विद्या और ऐश्वर्य्यवाले होते हैं और जैसे यह रात्रि दिन नियत समय आता और जाता वैसे ही मनुष्यों को व्यवहारों में सदा अपना वर्त्ताव रखना चाहिए ॥ ८ ॥

जा॒न॒त्यह्नः॑ प्रथ॒मस्य॒ नाम॑ शु॒क्रा कृ॒ष्णाद॑जनिष्ट श्विती॒ची ।
ऋ॒तस्य॒ योषा॒ न मि॑नाति॒ धामाह॑रहर्निष्कृ॒तमा॒चर॑न्ती ॥९॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (प्रथमस्य) विस्तरित पहले (अह्नः) दिन वा दिन के आदिम भाग का (नाम) नाम (जानती) जानती हुई (शुक्रा) शुद्धि करनेहारी (श्वितीची) सुपेदी को प्राप्त होती हुई प्रातःसमय की वेला (कृष्णात्) काले रङ्गवाले अन्धेरे से (अजनिष्ट) प्रसिद्ध होती है वा (ऋतस्य) सत्य आचरणयुक्त मनुष्य की (योषा) स्त्री के समान (अहरहः) दिन-दिन (आचरन्ती)

आचरण करती हुई (निष्कृतम्) उत्पन्न हुए वा निश्चय को प्राप्त (धाम) स्थान को (न) नहीं (मिनाति) नष्ट करती वैसी तू हो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे प्रातः समय की वेला अन्धकार से उत्पन्न होकर दिन को प्रसिद्ध करती है दिन से विरोध करनेहारी नहीं होती वैसे स्त्री सत्य-आचरण से अपने माता-पिता और पति के कुल को उत्तम कीर्ति से प्रशस्त कर अपने श्वशुर और पति के प्रति उनके अप्रसन्न होने का व्यवहार कुछ न करे ॥ ९ ॥

८८ कन्येव तन्वा३शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम्।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥१०॥४॥

पदार्थ—हे (देवि) कामना करनेहारी कुमारी ! जो तू (तन्वा) शरीर से (कन्येव) कन्या के समान वर्त्तमान (शाशदाना) व्यवहारों में अति तेजी दिखाती हुई (इयक्षमाणम्) अत्यन्त सङ्ग करते हुए (देवम्) विद्वान् पति को (एषि) प्राप्त होती (पुरस्तात्) और सम्मुख (विभाती) अनेक प्रकार सद्गुणों से प्रकाशमान (युवतिः) जवानी को प्राप्त हुई (संस्मयमाना) मन्द-मन्द हँसती हुई (वक्षांसि) छाती आदि अङ्गों को (आविः, कृणुषे) प्रसिद्ध करती है सो तू प्रभात की वेला की उपमा को प्राप्त होती है ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे विदुषी ब्रह्मचारिणी स्त्री पूरी विद्या, शिक्षा और अपने समान मनमाने पति को पाकर सुखी होती है वैसे ही और स्त्रियों को भी आचरण करना चाहिए ॥ १० ॥

८९ सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम्।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥११॥

पदार्थ—हे कन्या ! (सुसंकाशा) अच्छी सिखावट से सिखाई हुई (योषा) युवति (मातृमृष्टेव) पढ़ी हुई पण्डिता माता ने सत्यशिक्षा देकर शुद्ध की-सी जो (दृशे) देखने को (तन्वम्) अपने शरीर को (आविः) प्रकट (कृणुषे) करती (भद्रा) और मङ्गलरूप आचरण करती हुई (कम्) सुखस्वरूप पति को प्राप्त होती है सो (त्वम्) तू (वितरम्) सुख देनेवाले पदार्थ और सुख को (व्युच्छ) स्वीकार कर, हे (उषः) प्रभातवेला के समान वर्त्तमान स्त्रि ! जैसे (अन्याः) और (उषसः) प्रभात समय (न) नहीं (नशन्त) विनाश को प्राप्त होते वैसे (ते) तेरा (तत्) उक्त सुख न विनाश को प्राप्त हो ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे प्रातःकाल की वेला नियम से अपने-अपने समय और देश को प्राप्त होती हैं वैसे स्त्री अपने-अपने पति को पाकर ऋतुधर्म को प्राप्त होवें ॥ ११ ॥

९० अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य।
परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥१२॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! जैसे (सूर्यस्य) सूर्य्यमण्डल की (रश्मिभिः) किरणों के साथ उत्पन्न (यतमानाः) उत्तम यत्न करती हुई (अश्वावतीः) जिनकी प्रशंसित व्याप्तियां (गोमतीः) जो बहुत पृथिवी आदि लोक और किरणों से युक्त (विश्ववाराः) समस्त जगत् को अपने में लेती और (भद्रा) अच्छे (नाम) नामों को (वहमानाः) सबकी बुद्धियों में पहुँचाती हुई (उषसः) प्रभातवेला नियम के साथ (परा, यन्ति) पीछे को जाती (च) और (पुनः) फिर (च) भी (आ, यन्ति) आती हैं वैसे नियम से तुम अपना वर्त्ताव वर्त्तो ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे प्रभातवेला सूर्य के संयोग से नियम को प्राप्त हैं वैसे विवाहित स्त्रीपुरुष परस्पर प्रेम के स्थिर करनेहारे हों ॥ १२ ॥

ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रंभद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥१३॥६॥

पदार्थ—हे (उषः) प्रातःसमय की वेला-सी अलबेली स्त्रि ! तू (अद्य) आज जैसे (ऋतस्य) सूर्य की (रश्मिम्) किरण को प्रभात समय की वेला स्वीकार करती वैसे मन से प्यारे पति को (अनुयच्छमाना) अनुकूलता से प्राप्त हुई (अस्मासु) हम लोगों में (भद्रंभद्रम्, क्रतुम्) अच्छी-अच्छी बुद्धि वा अच्छे-अच्छे काम को (धेहि) धर (सुहवा) और उत्तम सुख देनेवाली होती हुई (नः) हम लोगों को (व्युच्छ) ठहरा जिससे (मघवत्सु) प्रशंसित धनवाले (अस्मासु) हम लोगों में (रायः) शोभा (च) भी (स्युः) हों ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे श्रेष्ठ स्त्री अपने-अपने पति आदि की यथावत् सेवा कर बुद्धि और ऐश्वर्य्य को नित्य बढ़ाती हैं वैसे प्रभात समय की वेला भी हैं ॥ १३ ॥

इस सूक्त में प्रभात समय की वेला के दृष्टान्त से स्त्रियों के धर्म का वर्णन करने से इस सूक्त में कहे हुए अर्थ की पिछले सूक्त में कहे अर्थ के साथ एकता है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ तेईसवां सूक्त और छठा वर्ग पूरा हुआ ॥

卐

अथ चतुर्विंशत्युत्तरशततमस्य त्रयोदशर्चस्य सूक्तस्य दैर्घतमसः कक्षीवान् ऋषिः। उषा देवता। १, ३, ६, ९—१० निचृत् त्रिष्टुप्; ४, ७, ११ त्रिष्टुप्; १२ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।२ १३ भुरिक पङ्क्तिः; ५ पङ्क्तिः, ८ विराट् पङ्क्तिश्च छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब तेरह ऋचावाले एकसौ चौबीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में सूर्यलोक के विषय का वर्णन किया है—

(62) उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत्।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद् द्विपत्प्र चतुष्पदित्यै ॥१॥

पदार्थ—जब (समिधाने) जलते हुए (अग्नौ) अग्नि का निमित्त (सूर्यः) सूर्यमण्डल (उद्यन्) उदय होता हुआ (उर्विया) पृथिवी के साथ (ज्योतिः) प्रकाश को (अश्रेत्) मिलाता तब (उच्छन्ती) अन्धकार को निकालती हुई (उषाः) प्रातःकाल की वेला उत्पन्न होती है ऐसे (अत्र) इस संसार में (सविता) कामों में प्रेरणा देनेवाला (देवः) उत्तम प्रकाशयुक्त सूर्यमण्डल (नः) हम लोगों को (अर्थम्) प्रयोजन को (इत्यै) प्राप्त कराने के लिए (प्रासावीत्) सारांश को उत्पन्न करता तथा (द्विपत्) दो पगवाले मनुष्य आदि वा (चतुष्पत्) चार पगवाले चौपाये, पशु आदि प्राणियों को (नु) शीघ्र (प्र) उत्तमता से उत्पन्न करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—पृथिवी का सूर्य की किरणों के साथ संयोग होता है वही संयोग तिरछा जाता हुआ प्रभात समय के होने का कारण होता है, जो सूर्य न हो तो अनेक प्रकार के पदार्थ अलग-अलग नहीं देखे जा सकते ॥ १ ॥

अब उषा के दृष्टान्त से स्त्री के विषय को अगले मन्त्रों में कहा है—

(63) अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥२॥

पदार्थ— हे स्त्रि! जैसे (उषाः) प्रातःसमय की वेला (दैव्यानि) दिव्य गुणवाले (व्रतानि) सत्य पदार्थ वा सत्य कर्मों को (अमिनती) न छोड़ती और (मनुष्या) मनुष्यों के सम्बन्धी (युगानि) वर्षों को (प्रमिनती) अच्छे प्रकार व्यतीत करती हुई (शश्वतीनाम्) सनातन प्रभातवेलाओं वा प्रकृतियों और (ईयुषीणाम्) हो गई प्रभातवेलाओं की (उपमा) उपमा दृष्टान्त और (आयतीनाम्) आनेवाली प्रभातवेलाओं में (प्रथमा) पहली संसार को (व्यद्योत्) अनेक प्रकार से प्रकाशित कराती और जागते अर्थात् व्यवहारों को करते हुए मनुष्यों को युक्ति के साथ सदा सेवन करने योग्य है वैसे तू अपना वर्त्ताव रख ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे यह प्रातः समय की वेला विस्तारयुक्त पृथिवी और सूर्य के साथ चलनेहारी जितने पूर्व देश को छोड़ती उतने उत्तर देश को ग्रहण करती है तथा वर्त्तमान और व्यतीत हुई प्रातः समय की

वेलाओं की उपमा और आनेवालियों की पहली हुई कार्यरूप जगत् का और जगत् के कारण का अच्छे प्रकार ज्ञान कराती और सत्य धर्म के आचरण निमित्तक समय का भङ्ग होने से उमर को घटाती हुई वर्त्तमान है वह सेवन की हुई बुद्धि और आरोग्य आदि अच्छे गुणों को देती है वैसे पण्डिता स्त्री हों ॥ २ ॥

(64) एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥३॥

पदार्थ—जैसे ही (एषा) यह प्रातःसमय की वेला (ज्योतिः) प्रकाश को (वसाना) ग्रहण करती हुई (समना) संग्राम में (दिवः) सूर्य के प्रकाश की (दुहिता) लड़की-सी हम लोगों ने (पुरस्तात्) दिन के पहले (प्रत्यदर्शि) प्रतीति से देखी वा जैसे समस्त विद्या पढ़ा हुआ वीर जन (ऋतस्य) सत्य कारण के (पन्थाम्) मार्ग को (अन्वेति) अनुकूलता से प्राप्त होता वा (साधु) अच्छे प्रकार जैसे हो वैसे (प्रजानतीव) विशेष ज्ञानवाली विदुषी पढ़ी हुई पण्डिता स्त्री के समान प्रभातवेला (दिशः) दिशाओं को (न) नहीं (मिनाति) छोड़ती वैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तती हुई स्त्री उत्तम हो ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे अच्छे नियम से वर्त्तमान हुई प्रातः समय की वेला सब को आनन्दित कराती और वह उत्तम अपने भाव को नहीं नष्ट करती वैसे स्त्रियां गृहस्थ धर्म में वर्त्तें ॥ ३ ॥

(65) उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधाइवाविरकृत प्रियाणि ।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्पुनरेयुषीणाम् ॥४॥

पदार्थ—जैसे प्रभातवेला (वक्षः) पाये पदार्थ को (शुन्ध्युवः) सूर्य की किरणों के (न) समान वा (प्रियाणि) प्रिय वचनों की (नोधाइव) सब शास्त्रों की स्तुति, प्रशंसा करनेवाले विद्वान् के समान वा (अद्मसत्) भोजन के पदार्थों को पकानेवाले के (न) समान (ससतः) सोते हुए प्राणियों को (बोधयन्ती) निरन्तर जगाती हुई और (एयुषीणाम्) सब ओर से व्यतीत हो गईं प्रभात वेलाओं की (शश्वत्तमा) अतीव सनातन होती हुई (पुनः) फिर (आ, अगात्) आती और(आविरकृत) संसार को प्रकाशित करती वह हम लोगों ने (उपो) समीप में (अदर्शि) देखी वैसी स्त्री उत्तम होती है ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है। जो स्त्री प्रभातवेला वा सूर्य वा विद्वान् के समान अपने सन्तानों को उत्तम शिक्षा से विद्वान् करती है वह सब का सत्कार करने योग्य है ॥ ४ ॥

(66) पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥५॥७॥

पदार्थ—जैसे प्रातःसमय की वेला कन्या के तुल्य (उभा) दोनों लोकों को (पृणन्ती) सुख से पूरती और (पित्रोः) अपने माता-पिता के समान भूमि और सूर्यमण्डल की (उपस्था) गोद में ठहरी हुई (वितरम्) जिससे विविध प्रकार के दुःखों से पार होते हैं उस (वरीयः) अत्यन्त उत्तम काम को (वि, उ, प्रथते) विशेष करके तो विस्तारती तथा (गवाम्) सूर्य की किरणों को (जनित्री) उत्पन्न करनेवाली (अत्यस्य) विस्तारयुक्त संसार में हुए (रजसः) लोकसमूह के (पूर्वे) प्रथम आगे वर्त्तमान (अर्धे) आधे भाग में (केतुम्) किरणों को (प्र,आ, अकृत) प्रसिद्ध करती है, वैसा वर्त्तमान करती हुई स्त्री उत्तम होती है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। प्रभातवेला से प्रसिद्ध हुआ सूर्यमण्डल का प्रकाश भूगोल के आधे भाग में सदा उजाला करता है और दूसरे आधे भाग में रात्रि होती है उन दिन-रात्रि के बीच में प्रातःसमय की वेला विराजमान है ऐसे निरन्तर रात्रि प्रभातवेला और दिन क्रम से वर्त्तमान हैं इस से क्या आया कि जितना पृथिवी का प्रदेश सूर्यमण्डल के आगे होता उतने में दिन और जितना पीछे होता जाता उतने में रात्रि होती तथा सायं और प्रातःकाल की सन्धि में उषा होती है इसी उक्त प्रकार से लोकों के घूमने के द्वारा ये सायं प्रातःकाल भी घूमते-से दिखाई देते हैं ॥ ५ ॥

(६६) एवेदेषा पुंरुतमा दृशे कं नाजामिं न परिं वृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा॑३ शाशंदाना नार्भादीषंते न महो विंभाती ॥६॥

पदार्थ—जैसे (अरेपसा) न कम्पते हुए निर्भय (तन्वा) शरीर से (शाशदाना) अति सुन्दरी (पुरुतमा) बहुत पदार्थों को चाहनेवाली स्त्री (दृशे) देखने के लिए (कम्) सुख को पति के (न) समान (परि, वृणक्ति) सब ओर से (न) नहीं छोड़ती पति भी (जामिम्) अपनी स्त्री के (न) समान सुख को (न) नहीं छोड़ता और (अजामिम्) जो अपनी स्त्री नहीं उसको सब प्रकार से छोड़ता है वैसे (एव) ही (एषा) यह प्रातःसमय की वेला (अर्भात्) थोड़े से (इत्) भी (महः) बहुत सूर्य के तेज का (विभाती) प्रकाश कराती हुई बड़े फैलते हुए सूर्य के प्रकाश को नहीं छोड़ती किन्तु समस्त को (ईषते) प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पति को छोड़ और के पति का सङ्ग नहीं करती वा जैसे स्त्रीव्रत पुरुष अपनी स्त्री से भिन्न दूसरी स्त्री का सम्बन्ध नहीं करता और विवाह किये हुए स्त्रीपुरुष नियम और समय के अनुकूल सङ्ग करते हैं वैसे ही प्रातः समय की वेला नियम युक्त देश और समय को छोड़ अन्यत्र युक्त नहीं होती ॥ ६ ॥

(६७) अभ्रातेवं पुंस एंति प्रतीची गंर्त्तारुगिंव सनये धनांनाम् ।
जायेव पत्यं उशती सुवासां उषा हस्रेव नि रिंणीते अप्संः ॥७॥

पदार्थ—यह (उषाः) प्रातःसमय की वेला (प्रतीची) प्रत्येक स्थान को पहुँचती हुई (अभ्रातेव) विना भाई की कन्या जैसे (पुंसः) पुरुष को प्राप्त हो उसके समान वा जैसे (गर्त्तारुगिव) दुःखरूपी गढ़े में पड़ा हुआ जन (धनानाम्) धन आदि पदार्थों के (सनये) विभाग करने के लिए राजगृह को प्राप्त हो वैसे सब ऊंचे-नीचे पदार्थों को (एति) पहुँचती तथा (पत्ये) अपने पति के लिए (उशती) कामना करती हुई (सुवासाः) और सुन्दर वस्त्रोंवाली (जायेव), विवाहिता स्त्री के समान पदार्थों का सेवन करती और (हस्रेव) हँसती हुई स्त्री के तुल्य (अप्सः) रूप को (नि रिणीते) निरन्तर प्राप्त होती है ॥ ७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में चार उपमालङ्कार हैं। जैसे विना भाई की कन्या अपनी प्रीति से चाहे हुए पति को आप प्राप्त होती वा जैसे न्यायाधीश राजा राजपत्नी और धन आदि पदार्थों के विभाग करने के लिए न्यायासन अर्थात् राजगद्दी को जैसे हँसमुखी स्त्री आनन्दयुक्त पति को प्राप्त होती और अच्छे रूप से अपने हावभाव को प्रकाशित करती वैसे ही यह प्रातः समय की वेला है यह समझना चाहिए ॥ ७ ॥

(८९) स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।

व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः ॥८॥

पदार्थ—हे कन्या ! जैसे (व्युच्छन्ती) अन्धकार का निवारण करती हुई (व्राः) पदार्थों को स्वीकार करनेवाली प्रातः समय की वेला (सूर्यस्य) सूर्यमण्डल की (रश्मिभिः) किरणों के साथ (अञ्जि) प्रसिद्ध रूप को (समनगाइव) निश्चय किये स्थान को जानेवाली स्त्री के समान (अङ्क्ते) प्रकाश करती है वा जैसे (स्वसा) बहन (ज्यायस्यै) जेठी (स्वस्रे) बहन के लिए (योनिम्) अपने स्थान को (अरैक्) छोड़ती अर्थात् उत्थान देती तथा (अस्याः) इस अपनी बहन के वर्त्तमान हाल को (प्रतिचक्ष्येव) प्रत्यक्ष देखके जैसे वैसे विवाह के लिए (अपैति) दूर जाती है वैसी तू हो ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। छोटी बहिन जेठी बहिन के वर्त्तमान हाल को जान आप स्वयंवर विवाह के लिए दूर भी ठहरे हुए अपने अनुकूल पति का ग्रहण करे। जैसे शान्त पतिव्रता स्त्री अपने-अपने पति को सेवन करती है वैसे अपने पति का सेवन करे, जैसे सूर्य अपनी कान्ति के साथ और कान्ति सूर्य के साथ नित्य अनुकूलता से वर्त्ते वैसे ही स्त्री पुरुष हों ॥ ८ ॥

(९०) आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।

ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥९॥

पदार्थ—जैसे (आसाम्) इन (पूर्वासाम्) प्रथम उत्पन्न जेठी (स्वसॄणाम्) बहिनों में (अपरा) अन्य कोई पीछे उत्पन्न हुई छोटी बहिन (अहसु) किन्हीं दिनों में अपनी (पूर्वाम्) जेठी बहिन के (अभ्येति) आगे जावे और (पश्चात्) पीछे अपने घर को चली जावे वैसे (सुदिनाः) जिनसे अच्छे-अच्छे दिन होते वे (उषासः) प्रातः समय की वेला (अस्मे) हम लोगों के लिए (नूनम्) निश्चय युक्त (प्रत्नवत्) जिसमें पुरानी न की धरोहर है उस (रेवत्) प्रशंसित पदार्थ

युक्त धन को (नव्यसीः) प्रतिदिन अत्यन्त नवीन होती हुई प्रकाश करे (ताः) वे (उच्छन्तु) अन्धकार को निराला करें ॥ ९ ॥

भावार्थ—जैसे बहुत बहिनें दूर-दूर देश में विवाही हुई होती उनमें कभी किसी के साथ कोई मिलती और अपने व्यवहार को कहती है वैसे पिछली प्रातः समय की वेला वर्त्तमान वेला के साथ संयुक्त होकर अपने व्यवहार को प्रसिद्ध करती हैं ॥ ९ ॥

प्र बोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।

रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत् स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥१०॥८॥

पदार्थ—हे (मघोनि) उत्तम धनयुक्त (उषः) प्रभातवेला के तुल्य वर्त्तमान स्त्री तू जो (अबुध्यमानाः) अचेत नींद में डूबे हुए वा (पणयः) व्यवहार युक्त प्राणी प्रभात समय वा दिन में (ससन्तु) सोवें उनको (पृणतः) पालना करनेवाले पुष्ट प्राणियों को प्रातःसमय की वेला के प्रकाश के समान (प्र, बोधय) बोध करा । हे (मघोनि) अतीव धन इकट्ठा करनेवाली (सूनृते) उत्तम सत्यस्वभावयुक्त युवति ! तू प्रभातवेला के समान (जारयन्ती) अवस्था व्यतीत कराती हुई (मघवद्भ्यः) प्रशंसित धनवानों के लिए (रेवत्) उत्तम धन-युक्त व्यवहार जैसे हो वैसे (स्तोत्रे) स्तुति प्रशंसा करनेवाले के लिए (रेवत्) स्थिर धन की (उच्छ) प्राप्ति करा ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । किसी को रात्रि के पिछले प्रहर में वा दिन में न सोना चाहिए क्योंकि नींद और दिन के घाम आदि की अधिक गरमी के योग से रोगों की उत्पत्ति होने से तथा काम और अवस्था की हानि से । जैसे पुरुषार्थ की युक्ति से बहुत धन को प्राप्त होता वैसे सूर्योदय से पहले उठकर यत्नवान् पुरुष दरिद्रता का त्याग करता है ॥ १० ॥

अवेयमश्वैद्युवतिः पुरस्ताद्युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम् ।

वि नूनमुच्छादसति प्र केतुर्गृहंगृहमुप तिष्ठाते अग्निः ॥११॥

पदार्थ—जैसे (इयम्) यह प्रभातवेला (अरुणानाम्) लाली लिये हुए (गवाम्) सूर्य की किरणों के (अनीकम्) सेना के समान समूह को (युङ्क्ते) जोड़ती और (पुरस्तादवाश्वैत्) पहले से बढ़ती है वैसे (युवतिः) पूरी चौबीस वर्ष की जवान स्त्री लाल रंग के गो आदि पशुओं के समूह को जोड़ती, पीछे उन्नति को प्राप्त होती इससे (प्र, केतुः) उठी है शिखा जिसकी वह बढ़ती हुई प्रभात वेला (असति) हो और (नूनम्) निश्चय से (व्युच्छात्) सबको प्राप्त हो (अग्निः) तथा सूर्यमण्डल का तरुण ताप उत्कट घाम (गृहंगृहम्) घर-घर (उप, तिष्ठाते) उपस्थित हो । युवति भी उत्तम बुद्धिवाली होती निश्चय से सब पदार्थों को प्राप्त होती और इसका उत्कट प्रताप घर-घर उपस्थित होता अर्थात् सब स्त्री-पुरुष जानते और मानते हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रभातवेला और दिन सदैव मिले हुए वर्त्तमान हैं वैसे ही विवाहित स्त्री-पुरुष मेल से अपना वर्त्ताव

रक्खें और जिस नियम के जो पदार्थ हों उस नियम से उनको पावें तब इनका प्रताप बढ़ता है ॥ ११ ॥

उच्चे वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥१२॥

पदार्थ—हे (नरः) मनुष्यो ! (ये) जो (पितुभाजः) अन्न का विभाग करनेवाले तुम लोग (चित्) भी जैसे (वयः) अवस्था को (वसतेः) वसीति से (उत् अपप्तन) उत्तमता के साथ प्राप्त होते वैसे ही (व्युष्टौ) विशेष निवास में (अमा) समीप के घर वा (सते) वर्त्तमान व्यवहार के लिए होओ और हे (उषः) प्रातःसमय के प्रकाश के समान विद्याप्रकाशयुक्त (देवि) उत्तम व्यवहार की देनेवाली स्त्रि ! जो तू (च) भी (दाशुषे) देनेवाले (मर्त्याय) अपने पति के लिए तथा समीप के घर और वर्त्तमान व्यवहार के लिए (भूरि) बहुत (वामम्) प्रशंसनीय व्यवहार की (वहसि) प्राप्ति करती उस (ते) तेरे लिए उक्त व्यवहार की प्राप्ति तेरा पति भी करे ॥ १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पखेरू ऊपर और नीचे जाते हैं वैसे प्रातःसमय की वेला रात्रि और दिन के ऊपर और नीचे जाती है तथा जैसे स्त्री पति के प्रियाचरण को करे वैसे ही पति भी स्त्री के प्यारे आचरण को करे ॥ १२ ॥

फिर कैसी स्त्री श्रेष्ठ हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

अस्तोळ्हवं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः ।
युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥१३॥६॥

पदार्थ—हे (उषासः) प्रभात वेलाओं के तुल्य (स्तोम्याः) स्तुति करने के योग्य (देवीः) दिव्य विद्या, गुणवाली पण्डिताओ ! (ब्रह्मणा) वेद से (उशतीः) कामना और कान्ति को प्राप्त होती हुई तुम (मे) मेरे लिए विद्याओं की (अस्तोळ्हवम्) स्तुति प्रशंसा करो और (अवीवृधध्वम्) हम लोगों की उन्नति कराओ तथा (युष्माकम्) तुम्हारी (अवसा) रक्षा आदि से (सहस्रिणम्) जिसमें सहस्रों गुण विद्यमान (च) और जो (शतिनम्) सैकड़ों प्रकार की विद्याओं से युक्त (च) और (वाजम्) अङ्ग, उपाङ्ग, उपनिषदों सहित वेदादि शास्त्रों का बोध उसको दूसरों के लिए हम लोग (सनेम) देवें ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रातर्वेला अच्छे गुण, कर्म और स्वभाव वाली हैं वैसी स्त्री हों और वैसे उत्तम गुण, कर्मवाले मनुष्य हों जैसे और विद्वान् से अपने प्रयोजन के लिए विद्या लेवें वैसे ही प्रीति से औरों के लिए भी विद्या देवें ॥ १३ ॥

इस सूक्त में प्रभातवेला के दृष्टान्त से स्त्रियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिए ॥

यह एकसौ चौबीसवां सूक्त और नवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ सप्तर्चस्यैकाधिकषष्टितमस्य सूक्तस्य विश्वामित्र ऋषिः । उषा देवता ।
१ । ५ । ७ त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ६ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः । ३ । ४ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले एकसठवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में प्रातःकाल की वेला की उपमा से स्त्री के गुणों को कहते हैं—

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणी देवि युवतिः पुरंन्धिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥१॥

पदार्थ—हे (वाजिनि) विज्ञानवाली (मघोनि) अत्यन्त धन से युक्त (देवि) सुन्दर (विश्ववारे) सब प्रकार वरने योग्य स्त्रि ! तुम (उषः) प्रातर्वेला के सदृश वर्त्तमान (वाजेन) विज्ञान के साथ (प्रचेताः) उत्तमता से सत्य अर्थ की जनाने वाली होती हुई (गृणतः) मुझ स्तुति करनेवाले की (स्तोमम्) प्रशंसा का (जुषस्व) सेवन करो जिस से कि (पुराणी) प्रथम नवीन (पुरन्धिः) बहुत उत्तम गुणों को धारण करनेवाली (युवतिः) पूर्ण चौवीस वर्ष वाली हुई (व्रतम्) कर्म को (अनु) अनुकूलता में (चरसि) करती हो इससे हृदयप्रिय हो ॥१॥

भावार्थ—हे स्त्रियो ! जैसे प्रातर्वेला सम्पूर्ण प्राणियों को जगा के कार्य्यों में प्रवृत्त करती हैं वैसे ही पतिव्रता होकर पतियों के साथ अनुकूलता से वर्त्त प्रशंसित होओ ॥१॥

फिर उसी विषय को प्रकारान्तर से अगले मन्त्रों में कहते हैं—

उषो देव्यमर्त्या वि भाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥२॥

पदार्थ—हे (देवि) उत्तम प्रकार शोभित (उषः) प्रातःवेला के सदृश वर्त्तमान (सूनृताः) उत्तम प्रकार सत्य क्रियाओं की (ईरयन्ती) प्रेरणा करती हुई (चन्द्ररथा) चन्द्रमा के सदृश रथ जिसका ऐसी (अमर्त्या) मरण धर्म से रहित हुई (वि भाहि) शोभित होओ । और (ये) जो (पृथुपाजसः) बहुत बलयुक्त (सुयमासः) उत्तम प्रकार नियम करनेवाले (हिरण्यवर्णाम्) तेजोमयी कान्ति को (अश्वाः) व्याप्त किरणों के सदृश (त्वा) आप को (आ, वहन्तु) प्राप्त हों उनको सुखपूर्वक आप शोभित करिये ॥२॥

भावार्थ—जैसे चन्द्रमारूप रथवाली प्रातःकाल की वेला तेजःस्वरूप होकर सब को जगाती हैं वैसे ही उत्तम पण्डिता स्त्रियां अपने अपने पति को सेवा और विनय से सुशील करती हैं ॥२॥

उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥३॥

पदार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) उत्पन्न हुए लोकों को (प्रतीची) प्राप्त होने और (अमृतस्य) अमृतस्वरूप रस की (केतुः) जनाने वाली (ऊर्ध्वा) ऊपर का वर्त्तमान (चक्रमिव) पहिये के सदृश चलने वाले (समानम्) तुल्य (अर्थम्) वस्तु को (चरणीयमाना) प्राप्त होती हुई (नव्यसि) अत्यन्त नवीन (उषः) प्रातःकाल की वेला वर्त्तमान और (तिष्ठसि) स्थिर होती है वैसे ही आप (आ, ववृत्स्व) वर्त्ताव करिये ॥३॥

भावार्थ—हे उत्तम स्त्रियो ! जैसे प्रातःकाल सम्पूर्ण भुवनों के खण्डों को प्रकाशित करते हैं वैसे ही उत्तम व्यवहारों को प्रकाशित करो ॥३॥

अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्व१र्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥४॥

पदार्थ—हे स्त्रियो ! जो (स्यूमेव) डोरों सदृश व्याप्त (चिन्वती) बटोरती हुई (मघोनी) अत्यन्त धन से युक्त (स्वसरस्य) दिन की (पत्नी) स्त्री के सदृश वर्त्तमान (स्वः जनन्ती) सूर्य्य वा सुख को उत्पन्न करती हुई (सुभगा) सौभाग्य की करने वाली (सुदंसाः) उत्तम कर्म जिस में विद्यमान ऐसी (उषाः) प्रातःकाल की वेला (आ, अन्तात्) सब प्रकार समीप से (दिवः) प्रकाशमान सूर्य्य और (आ) सब प्रकार समीप (पृथिव्याः) पृथिवी के योग से (पप्रथे) प्रख्यात होती है (अव, याति) और प्राप्त होती है वैसे ही आप लोग भी वर्त्ताव करो ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे स्त्रियो ! जैसे दिन का सम्बन्धी प्रातःकाल है वैसे ही छाया के सदृश अपने अपने पति के साथ अनुकूल होकर वर्त्ताव करो और जैसे यह प्रकाश पृथिवी के योग से होता है वैसे पति और पत्नी के सम्बन्ध से सन्तान होते हैं ॥४॥

अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक् ॥५॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो (रण्वसन्दृक्) सुन्दर पदार्थों के दिखाने (रोचना) रुचि करने और (मधुधा) मधुर पदार्थों को धारण करनेवाली (दिवि) प्रकाश में (वः) आप लोगों को (प्र, रुरुचे) अच्छी लगती है । और जिससे (वः) आप लोगों के (ऊर्ध्वम्) उत्तम (पाजः) बल का (अश्रेत्) श्रयण करती है उस (देवीम्) प्रकाशमान और आप लोगों और (विभातीम्) अनेक पदार्थों को प्रकाशित करती हुई (सुवृक्तिम्) उत्तम प्रकार वर्त्तमान (उषसम्) प्रभात वेला को (नमसा) वज्र अर्थात् बिजुली के साथ आप लोग (अच्छ) उत्तम प्रकार (प्र, भरध्वम्) पुष्ट कीजिये ॥५॥

भावार्थ—जैसे प्रातःकाल को सेवन करते हुए लोग उत्तम बल को प्राप्त होते हैं वैसे ही स्नेहपात्र पतिव्रता स्त्री को प्राप्त होकर पुरुष शरीर आत्मबल और आरोग्यपन को प्राप्त होते हैं जिससे दोनों के सदृश होने पर प्रेम बढ़े ॥५॥

अब प्रातर्वेला ही के गुणों को कहते हैं—

(८०) ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।
आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥६॥

पदार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् जन ! जो (रेवती) उत्तम धन करनेवाली (ऋतावरी) जिसमें सत्य विद्यमान ऐसी (दिव) प्रकाश से उत्पन्न हुई वेला (अर्कैः) सूर्यों से (अबोधि) जानी जाती (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (आ, अस्थात्) अच्छे प्रकार स्थित करती है उस (आयतीम्) आती और (विभातीम्) प्रकाशित करती हुई (उषसम्) प्रभात वेला को प्राप्त होकर समाधि से जगदीश्वर की (भिक्षमाणः) याचना करते हुए आप (चित्रम्) अद्भुत (वामम्) उत्तम प्रशंसा योग्य (द्रविणम्) धन को (एषि) प्राप्त होते हो ॥६॥

भावार्थ—जो लोग रात्रि के चौथे प्रहर में जाग के ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करके उत्तम गुणों और ऐश्वर्य्य को मांगते हैं वे पुरुषार्थ से अवश्य इस को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

अब बिजुली और शिल्पियों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं—

(८१) ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आ विवेश ।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा ॥७॥८॥

पदार्थ—हे मनुष्यो ! जो बिजुलीरूप अग्नि (बुध्ने) आन्तरिक्ष में (उषसाम्) प्रातःकालों और (ऋतस्य) सत्य के सम्बन्ध में (इषण्यन्) अपनी प्ररणा की इच्छा करता हुआ सा (वृषा) वृष्टि का हेतु (मही) बड़ी (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (आ, विवेश) प्रविष्ट होता है और (मित्रस्य) मित्र (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष की (मही) बड़ी पूज्य (माया) बुद्धि (चन्द्रेव) सुवर्णों के सदृश (पुरुत्रा) बहुत रूपयुक्त (भानुम्) सूर्य्य को (विदधे) धारण करता है इससे उस को जान के कार्यों को सिद्ध करो ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वानों की वाणी और बुद्धि ऐश्वर्य्य को देनेवाली हो और विद्याओं में प्रवेश करके सुखों को देती है वैसे ही सर्वत्र प्रविष्ट हुई बिजुली जानी हुई कार्यों में प्रयुक्त होकर ऐश्वर्य्य को उत्पन्न करती है ॥ ७ ॥

इस सूक्त में प्रातःकाल स्त्री बिजुली और शिल्पीजनों के गुण वर्णन करने से इसके अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह इकसठवां सूक्त और अष्टम वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

ऋग्वेदः मं० (५) सू० (७९)

अथ दशर्चस्यैकोनाऽशीतितमस्य सूक्तस्य सत्यश्रवा आत्रेय ऋषिः । उषा देवता । १ स्वराड्ब्राह्मी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । २, ३, ७ भुरिग्बृहती । १० स्वराड् बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः । ४, ५, ८ पङ्क्तिः । ६, ९ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब दश ऋचावाले उनासीवें सूक्त का प्रारम्भ है इसमें स्त्री कैसी हो इस विषय को कहते हैं—

(१२) महे नों अद्य बोधयोषों राये दिविर्त्मती ।
यथां चिन्नो अबोधयः सत्य श्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वंसूनृते ॥१॥

पदार्थ—हे (उषः) श्रेष्ठ गुणों से प्रातःकाल के सदृश वर्त्तमान (वाय्ये) डोरे के सदृश फैलाने योग्य सन्ततिरूप (सुजाते) उत्तम रीति से उत्पन्न (अश्वसूनृते) बड़ी प्रिय वाणी जिसकी ऐसी हे स्त्रि ! (यथा) जैसे (दिवित्मती) जैसे प्रकाश से युक्त प्रातर्वेला (महे) बड़े (राये) धन के लिए प्रबोध देती है वैसे (अद्य) आज (नः) हम लोगों को (बोधय) जनाइये और (चित्) भी (सत्यश्रवसि) सत्यों के श्रवण सत्य वा अन्न में (नः) हम लोगों को (अबोधयः) जनाइये ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे प्रातर्वेला दिन को उत्पन्न करके सब को जगाती है वैसे ही विद्यायुक्त स्त्री अपने सन्तानों को अविद्या के सदृश वर्त्तमान निद्रा से उठाकर विद्या को जनाती है ॥ १ ॥

(१३) या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छों दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रंवसि वाय्ये सुजाते अश्वंसूनृते ॥२॥

पदार्थ—हे (अश्वसूनृते) बड़े अन्न से युक्त (सुजाते) उत्तम संस्कारों से उत्पन्न (वाय्ये) जनाने योग्य (सहीयसि) अतिशय सहनेवाली (दिवः) सूर्य की (दुहितः) पुत्री के समान वर्त्तमान स्त्री (या) जो तू (शौचद्रथे) पवित्र रथ में (सुनीथे) श्रेष्ठ न्याय में (सत्यश्रवसि) सत्य का श्रवण जिसमें उसमें (वि, औच्छः) विशेष वसाती है (सा) वह तू हम लोगों को सुख में (वि, उच्छ) विशेष वसावे ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रातर्वेला सब को सुख में वसाती है वैसे ही श्रेष्ठ स्त्री आनन्दयुक्त गृहाश्रम में सब को वसाती है ॥२॥

(१४) सा नों अद्याभरद्वंसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रंवसि वाय्ये सुजाते अश्वंसूनृते ॥३॥

पदार्थ—हे (सत्यश्रवसि) सत्य व्यवहार से प्राप्त अन्न आदि ऐश्वर्य वाली (सुजाते) अच्छी विद्या से प्रकट हुई (वाय्ये) प्राप्त होने योग्य (अश्वसूनृते) बड़े ज्ञान से युक्त (सहीयसि) अतिशय सहनशील और (दिवः)

कामना करते हुए की (दुहितः) कन्या के सदृश विदुषी स्त्री (यो) जो तू (आभरद्वसुः) सब प्रकार से धनों को धारण करनेवाली हुई (नः) हम लोगों को (वि) विशेष करके (औच्छः) निवास करानेवाली है (सा) वह आप (अद्य) आज उत्तम सुख में (वि) विशेष करके (उच्छ) निवास कराओ ॥३॥

भावार्थ—जो स्त्रियाँ प्रातर्वेला के सदृश श्रेष्ठ गुणवाली हों तो सब को आनन्द में बसाने के योग्य होती हैं ॥ ३ ॥

(८५) **अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः ।**
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ॥४॥

पदार्थ—हे (मघोनि) बहुत धन से युक्त (सुजाते) उत्तम विद्या से प्रकट हुई (अश्वसूनृते) बड़े ज्ञान से युक्त और (विभावरि) प्रकाशवती प्रातर्वेला के सदृश वर्त्तमान विद्यायुक्त स्त्री (ये) जो विद्वान् जन (सुश्रियः) सुन्दर लक्ष्मी जिन की ऐसे (दामन्वन्तः) बहुत दानक्रिया से युक्त (सुरातयः) सुन्दर दान की इच्छा जिनकी वे (वह्नयः) पहुँचाने वाले अग्नियों के समान वर्त्तमान विद्वान् जन (मघैः) धनों से और (स्तोमैः) स्तोत्रों से (त्वा) आपकी (अभि) सन्मुख (गृणन्ति) स्तुति करते हैं वे आप से सत्कार करने योग्य हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि प्रातर्वेलाओं के कर्त्ता हैं वैसे ही शिक्षक जन विद्या की प्राप्ति करने वाले हों ॥ ४ ॥

(८६) **यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये ।**
परि चिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ॥५॥२१॥

पदार्थ—हे (अश्वसूनृते) बड़े ज्ञान से युक्त (सुजाते) उत्तम विद्या से प्रकट हुई विदुषि स्त्री ! (यत्) जो (इमे) ये (वष्टयः) कामना करते हुए (ते) आप के (गणाः) समूह (मघत्तये) धनदान के लिए (अह्रयम्) लज्जा आदि दोष से रहित को (चित्) और (राधः) धन को (ददतः) देनेवालों को (चित्) निश्चय (छदयन्ति) प्रबल करते हैं वे निश्चय (हि) ही सुखों को (परि, दधुः) धारण करें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रातःकाल के किरणसमूह अपने तेज से सब को ढाँपते हैं वैसे ही शुभगुण वाली स्त्रियाँ अपने शुभगुणों से सब को आच्छादित करती हैं ॥ ५ ॥

(८७) **ऐषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु ।**
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥६॥

पदार्थ हे (अश्वसूनृते) बड़े ज्ञानवाली (सुजाते) उत्तम विद्या से प्रकट हुई (मघोनि) प्रशंसित धन से युक्त और (उषः) प्रातःकाल के सदृश वर्त्तमान उत्तम स्त्री तू (एषु) इन स्त्री पुरुषों और (सूरिषु) विद्वानों में (वीरवत्) वीरजन विद्यमान जिस में उस (यशः) यश को (आ) सब प्रकार से

(धाः) धारण कर और (ये) जो (मघवानः) बहुत धनों से युक्त जन (नः) हम लोगों को (अह्रया) विना लज्जा से कहे गये (राधांसि) अन्नों को (अरासत) देवें उनका तू सत्कार कर ॥६॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वही प्रशंसित स्त्री है जो पिता और पति के कुल में श्रेष्ठ आचरण से पिता और पति के कुल को प्रकाशित करे ॥ ६ ॥

तेभ्यो॑ द्यु॒म्नं बृ॒हद्यश॑ उषो मघो॒न्या व॑ह ।
ये नो॒ राधां॒स्यश्व्या॑ ग॒व्या भज॑न्त सू॒रयः॒ सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ॥७॥

पदार्थ—हे (अश्वसूनृते) बड़े ज्ञान से युक्त और (सुजाते) उत्तम विद्या से प्रकट हुई (मघोनि) बहुत धनवती (उषः) प्रातःकाल के सदृश वर्त्तमान विदुषि स्त्रि ! (ये) जो (नः) हम लोगों में (सूरयः) विद्वान् जन (अश्व्या) घोड़ों के लिए और (गव्या) गौओं के लिए हितकारक (राधांसि) धनों का (भजन्त) सेवन करते हैं (तेभ्यः) उन विद्वानों के लिए (बृहत्) बड़े (द्युम्नम्) धन और (यशः) यश को (आ, वह) सब प्रकार प्राप्त कराओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् जन सब के सुख के लिये पदार्थों की वृद्धि करते हैं वे प्रातःकाल के सदृश प्रकाशित यशवाले होकर सुखी होते हैं ॥ ७ ॥

उ॒त नो॒ गोम॑ती॒रिष॒ आ व॑हा दुहितर्दिवः ।
सा॒कं सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ शु॒क्रैः शोच॑द्भि॒रर्चि॒भिः॒ सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ८

पदार्थ—हे (सुजाते) उत्तम विद्या से प्रकट हुई (अश्वसूनृते) बड़े ज्ञान से युक्त और (दिवः) प्रकाशमान की (दुहितः) कन्या के सदृश वर्त्तमान स्त्रि (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (रश्मिभिः) किरणों के (साकम्) साथ (उत) और (शुक्रैः) शुद्ध (शोचद्भिः) पवित्र करनेवाले (अर्चिभिः) श्रेष्ठ गुण कर्म्म और स्वभावों के साथ (नः) हम लोगों को (गोमतीः) गौएँ विद्यमान जिनमें उन (इषः) अन्न आदिकों को (आ, वह) सब प्रकार से प्राप्त कराइये ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य की किरणों से उत्पन्न उषा उपकार करनेवाली होती है वैसे ही शुभगुण कर्म और स्वभावों के सहित स्त्री आनन्द की उपकार करनेवाली होती है ॥ ८ ॥

व्यु॑च्छा दुहितर्दिवो॒ मा चि॒रं त॑नुथा॒ अपः॑ ।
नेत्वा॑ स्ते॒नं यथा॑ रि॒पुं तपा॑ति॒ सूरो॑ अ॒र्चिषा॒ सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ॥९॥

पदार्थ—हे (सुजाते) उत्तम विद्या से प्रकट हुई (अश्वसूनृते) बड़े ज्ञान से युक्त (दिवः) प्रकाश की (दुहितः) कन्या के सदृश वर्त्तमान उत्तम आचरणवाली स्त्रि तू (अपः) कर्म को (चिरम्) बहुत काल पर्यन्त (मा) नहीं (तनुथाः) विस्तार कर (यथा) जैसे (रिपुम्) शत्रु को (तपाति) संतापित करती है वैसे

(स्तेनम्) चोर को सन्तापित कर और (त्वा) तुझको कोई भी (न) नहीं सन्तापयुक्त करे और जैसे (अर्चिषा) तेज से (सूरः) सूर्य्य सबको तपाता है वैसे (इत्) ही तू दुष्टजनों को सन्तापित करके हम लोगों को (वि, उच्छा) अच्छे प्रकार वसा ॥ ९ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्त्री और पुरुष मन्द, आलसी और चोर नहीं होते हैं वे सूर्य्य के सदृश प्रकाशित होते हैं ॥ ९ ॥

एतावद्वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि ।
या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥१०॥

पदार्थ—हे (अश्वसूनृते) बड़े ज्ञान से युक्त (सुजाते) उत्तम विद्या से प्रकट हुई (विभावरि) प्रकाशमान और (उषः) प्रातर्वेला के सदृश वर्त्तमान स्त्री (त्वम्) तू (एतावत्) इतने को (वा) वा (भूयः) अधिक को (वा) भी (दातुम्) देने को (अर्हसि) योग्य है और (या) जो तू (स्तोतृभ्यः) स्तुति करनेवालों के लिये (उच्छन्ती) निवास करती हुई वर्त्तमान है वह तू अपने स्वरूप से (इत्) ही (न) नहीं (प्रमीयसे) मरती है ॥ १० ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे स्त्रीजनो! जैसे उषर्वेला थोड़ी भी बड़े आनन्दों को देती है वैसे तुम होओ ॥ १० ॥

इस सूक्त में प्रातः और स्त्री के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह उनासीवां सूक्त और बाईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

ऋग्वेदः मं० (५) सू० (८०)

अथ षड्चस्याऽशीतितमस्य सूक्तस्य सत्यश्रवा आत्रेय ऋषिः । उषा देवता ।
१ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
३, ४, ५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले अस्सीवें सूक्त का आरम्भ है इसमें स्त्रियों के गुणों को कहते हैं—

द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥१॥

भावार्थ—हे स्त्रि ! जैसे (विप्रासः) बुद्धिमान् जन (मतिभिः) बुद्धियों से और (ऋतेन) जल के सदृश सत्यसे (द्युतद्यामानम्) प्रहरों को प्रकाश करती और (बृहतीम्) बढ़ती हुई (ऋतावरीम्) बहुत सत्य आचरण से युक्त (अरुणप्सुम्) लाल रूपवाली (विभातीम्) प्रकाश करती हुई (देवीम्) प्रकाशमान और (स्वः) सूर्य्य के सदृश विद्या के प्रकाश को (आ, वहन्तीम्) धारण करती हुई (उषसम्) उषर्वेला की (प्रति) उत्तम प्रकार (जरन्ते) स्तुति करते हैं उनकी तू प्रशंसा कर ॥ १ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बुद्धिमान् पति उपः-काल आदि पदार्थों की विद्या को जानकर क्षणभर भी काल व्यर्थ नहीं व्यतीत करते हैं वैसे ही स्त्रियां भी व्यर्थ समय न व्यतीत करें ॥ १ ॥

(१०३) एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृण्वती यात्यग्रे ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥२॥

पदार्थ—हे उत्तम स्वभाववाली स्त्रियो ! जैसे (एषा) यह (बृहद्रथा) बड़े रथ जिसके ऐसी (बृहती) बड़ी (विश्वमिन्वा) संपूर्ण जगत् को प्रक्षेप करती अलग करती और (जनम्) मनुष्य को और (दर्शता) देखने योग्य भूमियों को (बोधयन्ती) जनाती हुई (सुगान्) सुखपूर्वक जिनमें चलें उन (पथः) मार्गों को (कृण्वती) प्रकाशित करती हुई (उषाः) प्रातर्वेला (अग्रे) दिन से आगे (याति) चलती है और (अह्नाम्) दिनों के (अग्रे) पहिले से (ज्योतिः) प्रकाश को (यच्छति) देती है वैसे तुम होओ ॥ २ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्त्रियां प्रभातवेला के सदृश अपने पति आदि को सूर्य्योदय से पहिले जगातीं; गृह और बाहर के मार्गों को साफ करतीं, आते हुए पतियों के हाथ जोड़ के आगे खड़ी होतीं और सब काल में विज्ञान को देती हैं वे ही देश और कुल को शोभन करनेवाली हैं ।। २ ॥

(१०४) एषा गोभिररुणेभिर्युजानास्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे ।
पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता विश्ववारा वि भाति ॥३॥

पदार्थ—हे विद्यायुक्त स्त्रि ! जैसे (एषा) यह प्रातर्वेला (अरुणेभिः) चारों ओर रक्त वर्णवाले (गोभिः) किरणों के साथ (युजाना) युक्त और (रयिम्) धन को (अस्रेधन्ती) सिद्ध करती हुई (अप्रायु) नहीं नष्ट होनेवाले को (चक्रे) करती है और (पथः) मार्गों को (रदन्ती) खोदती हुई (पुरुष्टुता) बहुतों से प्रशंसा की गई (विश्ववारा) सम्पूर्ण मनुष्यों से स्वीकार करने योग्य (देवी) प्रकाशित होती हुई (सुविताय) ऐश्वर्य्य के लिये (वि, भाति) विशेष करके प्रकाशित होती है वैसे आप होओ ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पतिव्रता, विद्यायुक्त और चतुर स्त्री गृह को प्रकाशित करनेवाली होती है वैसे ही प्रातर्वेला ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करनेवाली है ॥ ३ ॥

(१०५) एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥४॥

पदार्थ—हे विद्यायुक्त स्त्रि ! जैसे (एषा) यह प्रातर्वेला (पुरस्तात्) प्रथम (तन्वम्) शरीर को (आविष्कृण्वाना) और संपूर्ण रूपवाले द्रव्यों की प्रकटता करती हुई (द्विबर्हाः) दिन और रात्रि से बढ़ानेवाली (व्येनी) विशेष हरिणी के सदृश वेगयुक्त (भवति) होती है और (ऋतस्य) सत्य के (पन्थाम्) मार्ग को

(अनु, एति) अनुगामिनी होती है और (साधु) उत्तम विज्ञान को (प्रजानतीव) विशेष करके जानती हुई सी (दिशः) दिशाओं का (न) नहीं (मिनाति) नाश करती है वैसा तू वर्त्ताव कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सती स्त्री गृहाश्रम के मार्ग को प्रकाशित करके सम्पूर्ण सुखों को प्रकट करती है वैसे ही प्रातर्वेला वर्त्तमान है ॥ ४ ॥

(७०६८) **एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात् ।**
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥५॥

पदार्थ—हे श्रेष्ठ लक्षणोंवाली स्त्रि ! जैसे (एषा) यह (उषाः) प्रातर्वेला (शुभ्रा) श्वेतवर्णवाली बिजुली के (न) सदृश (तन्वः) शरीरों को (विदाना) जनाती हुई (ऊर्ध्वेव) ऊपर सी स्थित (स्नाती) शुद्ध और (नः) हम लोगों के (दृशये) दर्शन के लिये (अस्थात्) स्थित होती है और (द्वेषः) द्वेष करनेवाले जनों और (तमांसि) रात्रियों को (अप, बाधमाना) निवारण करती हुई (दिवः) सूर्य्य की (दुहिता) कन्या के सदृश वर्त्तमान (ज्योतिषा) प्रकाश से (आ, अगात्) प्राप्त होती है वैसे तू हो ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे कुलीन स्त्री जलादिकों और इन्द्रियों के निग्रहों से बाहर और भीतर से शुद्ध, गृहस्थान्धकार को निवृत्त करती हुई सब के शरीर की रक्षा करती है और गृह के कृत्यों में चतुर है वैसे ही प्रातर्वेला होती है ॥ ५ ॥

(०६) **एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।**
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥६॥२३॥

पदार्थ—हे शुभ लक्षणोंवाली स्त्रि ! जैसे (एषा) यह प्रातर्वेला (दिवः) सूर्य्य की (दुहिता) कन्या के सदृश (नॄन्) अग्रणी श्रेष्ठ पुरुषों को (योषेव) स्त्री के सदृश (भद्रा) कल्याण करनेवाली (प्रतीची) पश्चिम दिशा को प्राप्त (अप्सः) सुन्दर रूप को (नि, रिणीते) अत्यन्त प्राप्त होती है और (दाशुषे) देनेवाले के लिए (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य धन आदि को (व्यूर्ण्वती) विशेष करके आच्छादित करती हुई (पूर्वथा) पहिली के सदृश (पुनः) फिर (ज्योतिः) ज्योतिःरूप को (युवतिः) प्राप्त यौवनावस्था वाली के सदृश (अकः) करती है वैसी तुम होओ ॥ ६ ॥

भावार्थ—इस मंत्र में उपमावाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो स्त्रियां शुभ आचरणवाली और युवावस्था को प्राप्त हुई अपने सदृश पतियों को प्राप्त होकर सम्पूर्ण गृहकृत्यों को व्यवस्थापित करती हैं प्रातर्वेला के सदृश अत्यन्त शोभित होती हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्त में प्रातर्वेला और स्त्री के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह अस्सीवां सूक्त और तेईसवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

ऋग्वेदः मं० (६) सू० (६४)

अथ षडृचस्य चतुःषष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । उषा देवता । १,२,६ विराट्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब स्त्रियां कैसी श्रेष्ठ होती हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

(६८) उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः ।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ॥१॥

पदार्थ—हे पुरुषो जो स्त्रियां (रोचमानाः) दीप्तिमती (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान वा (अपाम्) जलों की (रुशन्तः) हिंसती अर्थात् कूलों को विदारती हुई (ऊर्मयः) तरङ्गों के (न) समान (श्रिये) शोभा के लिए (उत्, अस्थुः) उठती हैं वे (उ) ही सुख देने वाली हैं जो (वस्वी) वसुओं की यह (दक्षिणा) दक्षिणा के समान (मघोनी) परमधनयुक्त (अभूत्) होती है वह उषा के समान (उ) ही (विश्वा) समस्त (सुपथा) शुभ मार्ग वाले (सुगानि) जिनमें सुन्दरता से चलें उन कामों को (कृणोति) करती है ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे पुरुषो ! जैसे प्रभातवेलायें रुचि करनेवाली होती हैं वैसी हुई स्त्रियां श्रेष्ठ हैं वा जैसे जलतरंगें तटों को छिन्नभिन्न करती हैं वैसे ही जो स्त्रियां दुःखों को छिन्नभिन्न करती हैं और जो दिन के तुल्य समस्त गृहकृत्यों को प्रकाशित करती हैं वे ही सर्वदा मंगलकारिणी होती हैं ॥१॥

फिर वह कैसी हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

(७०) भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भास्युत्ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन् ।
आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमानोषो देवि रोचमाना महोभिः ॥ २॥

पदार्थ—हे (उषः) प्रभातवेला के समान वर्त्तमान (देवि) विदुषी जिससे तू (भद्रा) कल्याणकारिणी (ददृक्षे) देखी जाती है तथा (उर्विया) बहुरूप हुई घर के कामों का (उत्, वि, भासि) विशेषकर उत्तम प्रकाश करती है जिस (ते) तेरी (शोचिः) उत्तम नीति का प्रकाश (भानवः) किरणें जैसे (द्याम्) अन्तरिक्ष को (अपप्तन्) जातीं प्राप्त होती वैसे (वक्षः) छाती का (आविः, कृणुषे) प्रकाश करती है वा (महोभिः) महान् शुभ गुणकर्म स्वभावों से (शुम्भमाना) सुन्दर शोभायुक्त और (रोचमाना) विद्या और विनय से प्रकाशित होती हुई सुख देती है इससे अच्छे प्रकार सत्कार करने योग्य है ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे स्त्रियो ! तुम चतुरता से सब पति आदि को संतोष देकर, घर के कामों को यथावत् अनुष्ठान कर, अति-विषयासक्ति को छोड़ और सुन्दर शोभायुक्त होकर सदैव पुरुषार्थ से धर्मयुक्त कामों को सूर्य के समान प्रकाशित करो ॥२॥

फिर वे कैसी हों इस विषय को कहते हैं—

(११०) वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम् ।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून्बाधते तमो अजिरो न वोळ्हा ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे स्त्री तू (अजिरः) जो शीघ्र नहीं जाता उस पुरुष के (न) समान और (वोळ्हा) विवाहित स्त्री (शत्रून्) शत्रुओं को (शूरः) बल वा पराक्रम आदि योग से निर्भय (अस्तेव) शस्त्र और अस्त्रों को अच्छे प्रकार फेंकने वाले के समान (अप, ईजते) दूर करती तथा प्रभातवेला जैसे (तमः) अन्धकार वा रात्रि को (बाधते) नष्टभ्रष्ट करे वा जैसे (अरुणासः) लाल काली पीली धौली आदि (रुशान्तः) पदार्थों को छिन्नभिन्न करती हुई (गावः) किरणें सब पदार्थों को (सीम्) सब ओर से (वहन्ति) पहुँचाती हैं वैसे (उर्विया) बहुत पुरुषार्थयुक्त हो । हे पुरुष ! उषा को जैसे सूर्य वैसे इस (प्रथानाम्) अत्यन्त सुन्दरता से प्रख्यात भार्या को (सुभगाम्) सौभाग्ययुक्त करो ॥३॥

भावार्थ—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो प्रभातवेला के समान सुप्रकाश, सुरूपवती, सूर्य किरणों के तुल्य घर के कामों की व्यवस्था का निर्वाह करनेवाली, शूरवीर के समान व्यथा अर्थात् परिश्रम की थकावट न मानने वाली स्त्रियां हों उनका निरन्तर सत्कार कर सौभाग्ययुक्त करो ॥३॥

फिर वह स्त्री कैसी हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं—

(१११) सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो ।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥ ४ ॥

पदार्थ—हे (स्वभानो) अपनी दीप्तियुक्त (पृथुयामन्) बहुत पदार्थों की प्राप्ति करानेवाले (ऋष्वे) महान् गुणयुक्त विद्वान् आप इस स्त्री के साथ (रयिम्) लक्ष्मी को (आ, वह) प्राप्त कराइये और (नः) हम लोगों की रक्षा करिये तथा (अपः) जलों के समान दुःखों को (तरसि) तरते अर्थात् उनसे अलग होते हो । और (आवते) निर्वात होने से (पर्वतेषु) पर्वतों में जैसे सुगम से जाते हो । तथा जो (ते) तुम्हारी (सुगा) सुन्दरता से जाने योग्य स्त्री वा हे (दिवः) प्रकाश की (दुहितः) कन्या के समान वर्त्तमान स्त्री तू पति को (इषयध्यै) प्राप्त होने को योग्य हो (उत) और तेरा पति तेरे मन का प्रिय हो (सा) सो तू हम लोगों को (सुपथा) अच्छे मार्ग से सुख प्राप्त करा ॥४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे अच्छी नीति वाले राजजन पर्वतों में भी अच्छे मार्गों को बनाय सब मार्ग चलनेवालों को सुखी करते हैं वा जैसे उषा (प्रभातवेला) मार्गों को प्रकाशित कराती वैसे ही उत्तम परस्पर प्रसन्न स्त्री पुरुष धर्ममार्ग का संशोधन कर परोपकार का प्रकाश कराते हैं ॥४॥

फिर वे स्त्री पुरुष कैसे वर्त्ताव वर्त्तें इस विषय को कहते हैं—

(११२) सा वह योक्षभिरवातोपो वरं वहसि जोषमनु ।
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ॥५॥

पदार्थ—हे (दिवः) सूर्य की (दुहितः) कन्या के तुल्य तथा (उषः) उषा प्रभातवेला के समान वर्त्तमान श्रेष्ठ मुख वाली (या) जो (अवाता) वायुरहित (उक्षभिः) वीर्यसेचकों से युक्त (वरम्) श्रेष्ठ (जोषम्) प्रीति से चाहे हुए पति को (अनु) अनुकूलता से (त्वम्) तू (वहसि) प्राप्त होती (सा) वह मुझ पति को (आ, वह) सब ओर से प्राप्त हो (या) जो (ह) ही (पूर्वहूतौ) पूर्व सत्कार करने योग्यों के आह्वान के निमित्त (मंहना) सत्कार करने और (दर्शता) देखने योग्य (देवी) विदुषी तू (भूः) हो सो मेरी प्रिया स्त्री हो ॥५॥

भावार्थ—जैसे उषा रात्रि के अनुकूल वर्त्तमान नियम से अपने काम को करती है वैसे ही नियमयुक्त स्त्री अपने घर के कामों को करे तथा ब्रह्मचर्य के अनन्तर अपने मन के प्यारे पति को विवाह कर प्रसन्न होती हुई पति को निरन्तर प्रसन्न करे ऐसे ही पति भी उस अनुकूल आचरण करनेवाली को सदैव आनन्दित करे ॥५॥

फिर वे स्त्री पुरुष परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं—

उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥६॥५॥

पदार्थ—हे (उषः) उषा के समान वर्त्तमान (देवि) मनोहररूपवती जो तू (व्युष्टौ) विविध गुणों से सेवा करने योग्य प्रभातवेला में (सते) वर्त्तमान (दाशुषे) सुख देनेवाले (मर्त्याय) मनुष्य पति के लिये (अमा) घरों को (भूरि) बहुत (वामम्) प्रशंसित कर्म जैसे हों वैसे (वहसि) प्राप्त होती उस (ते) तेरे (ये) जो (पितुभाजः) उत्तम अन्न के सेवनेवाले (नरः) मनुष्य वे (च) भी (वसतेः) निवास के सम्बन्ध में (वयः) पक्षियों के (चित्) समान तेरे सुरूप को देख (उत्, अपप्तन्) उड़ते हैं उनमें से स्वयंवर विधि से सर्वथा प्रसन्न पति को तू प्राप्त हो ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो वधू और वर स्वयंवर विवाह से परस्पर प्रसन्न होकर विवाह करते हैं वे सूर्य्य और और उषा के समान गृहाश्रम को उत्तम आचार से अच्छे प्रकार प्रकाशित कर सर्वदा आनन्दित होते हैं ॥६॥

इस सूक्त में उषा और सूर्य के तुल्य स्त्रियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौसठवां सूक्त और पांचवां वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ षडृचस्य पञ्चषष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । उषा देवता । १ भुरिक्पङ्क्तिः । ५ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चम स्वरः । २, ३ विराट्त्रिष्टुप् । ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले पंसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर वह स्त्री कैसी हो इस विषय को कहते हैं—

(११४) एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः ।
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून् ॥ १ ॥

पदार्थ—हे स्वीकार करने योग्य (या) जो (रुशता) रूप से (भानुना) किरण के साथ वर्त्तमान (राम्यासु) रात्रियों में (अज्ञायि) जानी जाय (तमसः) अन्धकार से (चित्) भी (अक्तून्) रात्रियों को (तिरः) तिरस्कार करती तथा (मानुषीः) मनुष्यसम्बन्धी प्रजाओं को (क्षितीः) और पृथिवियों को (उच्छन्ती) विशेष निवास कराती हुई (दिवोजाः) सूर्य्य से उत्पन्न हुई उषा के समान (अजीगः) जगाती है (नः) हमारी (एषा) सो (स्या) यह (दुहिता) कन्या है तुम ग्रहण करो ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो कन्या उषा के तुल्य वा बिजुली के तुल्य अच्छे प्रकाश को प्राप्त, विद्या विनय और हाव भाव कटाक्षों से पति आदि को आनन्दित करती है वा जैसे सूर्य्य रात्रि को दूर कर सब प्रजा को प्रकाशित करता है वैसे घर से अविद्या और अन्धकार को निवार विद्या से सब को प्रकाशित करती है वही उत्तम स्त्री होती है ॥१॥

फिर वे स्त्री कैसी हों इस विषय को अगले मन्त्रों में कहते हैं—

(११५) वि तद्ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः ।
अग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्तीर्वि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः ॥२॥

पदार्थ—हे पुरुषो ! जो कन्याएँ जैसे (चन्द्ररथाः) जिनका सुवर्ण के समान रमणीयरूप है वे (उषसः) प्रभातवेलाएँ (अरुणयुग्भिः) जो अरुण किरणों की योजना करती हैं उन (अश्वैः) बड़ी बड़ी किरणों से (ययुः) प्राप्त होती हैं (तत्, चित्रम्) उस आश्चर्य्य को (वि, भान्ति) विशेषता से प्रकाशित करती हैं तथा (बृहतः) महान् (यज्ञस्य) संग करने योग्य गृहस्थों के व्यवहार के (अग्रम्) अगले भाग को (नयन्तीः) प्राप्त कराती हुई (ऊर्म्यायाः) रात्रि के (तमः) अन्धकार को (वि, बाधन्ते) नष्ट करती हैं (ताः) उनके समान दुःखान्धकार को दूर करनेवाली वधुओं को तुम प्राप्त होओ ॥२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपलमालंकार है । हे मनुष्यो ! तुम अपने सदृश गुणकर्मस्वभावयुक्त प्रभातवेलाओं के समान आनन्द देनेवाली, विद्या और नम्रता आदि गुणों से सुशील, ब्रह्मचारिणी कन्याओं को प्राप्त होकर उनको निरन्तर आनन्द देकर आप आनन्द को प्राप्त होओ ॥२॥

(११६) श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्तीर्नि दाशुष उषसो मर्त्याय ।
मघोनीर्वीरवत्पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ॥ ३ ॥

पदार्थ—हे पुरुषो ! जो (उषसः) प्रभातवेलाओं के समान (दाशुषे) विद्यादि शुभगुण देनेवाले (विधते) सेवा करते हुए (मर्त्याय) मनुष्य के लिए (श्रवः) श्रवण (वाजम्) विज्ञान (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) पराक्रम को (वहन्तीः) प्राप्त कराती तथा (मघोनीः) बहुत उत्तम धनवाली (वीरवत्) वीर के समान (पत्यमानाः) प्राप्त होती हुई स्त्रियाँ (अद्य) इस समय (रत्नम्) रमणीय (अवः) रक्षा को प्राप्त होती उनको तुम (नि, धात) निरन्तर धारण करो ॥ ३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो उषा के समान वर्त्तमान सत्यशास्त्र श्रवणादियुक्त, बलिष्ठ, विचक्षण (चित्रविचित्र बुद्धियुक्त) धन और ऐश्वर्य की बढ़ानेवाली, रक्षा में तत्पर, विदुषी स्त्रियां हों उनके बीच से अपनी अपनी प्रिया भार्या को सब ग्रहण करें ॥ ३ ॥

(११७) इदा हि वो विधते रत्नमस्तीदा वीराय दाशुष उषासः ।
इदा विप्राय जरते यदुक्था नि ष्म मावते वहथा पुरा चित् ॥४॥

पदार्थ—हे वीर पुरुषो ! जैसे (उषासः) उषाकाल, उन्हीं के समान वर्त्त-मान भार्याओं को जो प्राप्त होओ तो (इदा) अब (हि) ही (वः) तुमको (विधते) सेवन करते हुए के लिए (रत्नम्) रमणीय धन (अस्ति) विद्यमान है वा (इदा) अब (दाशुषे) देते हुए (वीराय) बलिष्ठ जन के लिए और (इदा) अब (जरते) स्तुति करनेवाले (विप्राय) मेधावी पुरुष के लिए (मावते) जो मेरे सदृश है उसके लिए (पुरा) पहिले (चित्) भी (यत्) जो (उक्था) कहने के योग्य वचन हैं (स्म) उन्हीं को (नि, वहथा) निवाहो ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो उषा के समान वर्त्तमान भार्याएँ तुम लोगों को प्राप्त हों तो इसी जन्म में सब सुख तुम लोगों को प्राप्त हों क्योंकि अविरोध से वर्त्तमान स्त्री पुरुषों को सदैव यश प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

फिर वह कैसी है इस विषय को कहते हैं—

(११८) इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति ।
व्य१र्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद्देवहूतिः ॥ ५ ॥

पदार्थ—(अद्रिसानो) मेघ के बीच शिखर [चोटी] रखनेवाली (उषः) प्रभातवेला के समान वर्त्तमान उत्तम स्त्री जैसे (ते) तेरे सम्बन्धी (अङ्गिरसः) पवनों के तुल्य (अर्केण) सूर्य्य (ब्रह्मणा) परमेश्वर वा वेद से (च) भी सूर्य को (गोत्रा) पृथिवी के समान वा (गवाम्) किरणों के सम्बन्ध को (वि, गृण-न्ति) प्रस्तुत करते हैं और (बिभिदुः) विदीर्ण करते हैं वैसे (इदा) अब (हि)

ही (वेयहूतिः) विद्वान् जन जिससे बुलाते हैं वैसी तू प्रसिद्ध होती है सो तू (नृणाम्) मनुष्यों के बीच (सत्या) विद्यमान पदार्थों में उत्तम (अभवत्) होती है ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे किरणें प्रभातवेला से सूर्यप्रकाश की निमित्त हैं वैसे ही सत्य व्यवहारों को सिद्ध करने और दुष्ट व्यवहारों का विरोध करनेवाली उषा है वैसी श्रेष्ठ स्त्री होती है ॥ ५ ॥

फिर वह किसके समान क्या करके किसको प्राप्त होती है इस विषयों को कहते हैं—

उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधते मघोनि ।
सवीरं रयिं गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥६॥६॥

पदार्थ—हे (दिवः) बिजुली की (दुहितः) कन्या के समान वर्त्तमान (मघोनि) परमपूजित धनयुक्त पत्नी तू (नः) हम लोगों का (विधते) विधान करनेवाले के लिए (प्रत्नवत्) प्राचीन कारण जिसमें विद्यमान उसके वा (भरद्वाजवत्) कर्णों के तुल्य (उच्छा) विवास कराओ अर्थात् एक देश से दूसरे देश में वास कराओ (गृणते) और प्रशंसा करनेवाले तेरे पति के लिए वा (नः) हम लोग जो संवन्धी हैं उनके लिए (उरुगायम्) बहुत अपत्य धन वा गृह जिससे प्राप्त होते हैं उसे और (श्रवः) अन्न वा श्रवण तथा (सुवीरम्) शोभन वीर जिससे उस (रयिम्) धन को (अधि, धेहि) अधिकता से धारण कर और तू मुझ से इस उक्त विषय को (रिरीहि) मांग ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे वीर पुरुष ! बिजुली का प्रकाश और संप्रयोग किया हुआ सत्य ऐश्वर्य को उत्पन्न करता है वैसे ही शुभ आचरण करनेवाली पत्नी घर का सौभाग्य बढ़ाती है और जैसे आचार्य प्रति समय सुन्दर शिक्षा और विद्या को विद्यार्थियों को ग्रहण कराते हैं वैसे ही विद्वान् स्त्री पुरुष अपने सन्तानों को विद्या और सुन्दर शिक्षा ग्रहण करावें ॥ ६ ॥

इस सूक्त में उषा के तुल्य स्त्री जनों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पैंसठवां सूक्त और छठा वर्ग समाप्त हुआ ॥

卐

अथ अष्टर्चस्य पञ्चसप्ततितमस्य सूक्तस्य १-८ वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः-१, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ६, ७ आर्षी त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए उषा=ब्राह्ममुहूर्त्त काल में ब्रह्मोपासना का विधान कथन करते हैं ॥

(920) व्युषा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमङ्गिरस्तमा पथ्या अजीगः ॥१॥

पदार्थः—(उषाः) उषा=ब्राह्ममुहूर्त्त काल के सूर्य्य का विकास (दिविजाः) अन्तरिक्ष को प्रकाशित करता हुआ (ऋतेन) अपने तेज से (आविष्कृण्वाना) प्रकट होकर (महिमानम्, आ आगात्) परमात्मा की महिमा को दिखलाता, और (वि) विशेषतया (तमः) अंधकार को (अपद्रुहः) दूर करता हुआ (आवः) प्रकाशित होकर (अंगिरस्तमा) मनुष्यों के आलस्य को निवृत्त करके (अजुष्टं) परमात्मा के साथ जोड़ता हुआ (पथ्या, अजीगः) पथ्य=शुभ मार्ग का प्रेरक होता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में परमात्मा की महिमा का वर्णन करते हुए उपदेश किया है कि हे सांसारिक जनो ! सूर्य द्वारा परमात्मा की महिमा का अनुभव करते हुए उनके साथ अपने आपको जोड़ो अर्थात् ब्रह्ममुहूर्त्त काल में जब सूर्य द्युलोक को प्रकाशित करता हुआ अपने तेज से उदय होता है उस काल में मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है कि वह आलस्य को त्याग कर परमात्मा की महिमा को अनुभव करते हुए ऋत=सत्य के आश्रित हों, उस महान् प्रभु की उपासना में संलग्न हों और याज्ञिक लोग उसी काल में यज्ञों द्वारा परमात्मा का आह्वान करें अर्थात् मनुष्य मात्र को ब्रह्मज्ञान का उपदेश करें जिससे सब प्राणी परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हुए सुखपूर्वक अपने जीवन को व्यतीत करें, यह परमात्मा का उच्च आदेश है ॥१॥

अब परमात्मा उषा काल में सौभाग्य प्राप्ति तथा धन-प्राप्ति के लिये प्रार्थना करने का उपदेश करते हैं ॥

(921) महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौभगाय प्र यन्धि ।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम् ॥२॥

पदार्थः—(उषः) ब्रह्ममुहूर्त्त में (बोधि) उठकर (सुविताय) अपने सुख के लिये प्रार्थना करो कि हे परमात्मन् (महे) आप अपनी महत्ता से (अद्य) आज=सम्प्रति (नः) हमको (महे, सौभगाय) बड़े सौभाग्य के लिये (प्रयन्धि) प्राप्त होकर (चित्रं, यशसं, धेहि) नाना प्रकार का धन और यश

दें (देवि) हे दिव्यस्वरूप परमात्मन् (मर्तेषु) इस मनुष्य लोक में (अस्मे) हमें (मानुषी) मनुष्यों के कर्मों में प्रवृत्त करें और हम (श्रवस्युं) पुत्र पौत्रादि परिवार से युक्त हों ॥२॥

भावार्थः— परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम प्रातःकाल में उठकर अपने सौभाग्य के लिये प्रार्थना करो कि हे परमात्मन् ! इस मनुष्यलोक में आप हमें नाना प्रकार का धन, यश, बल, तेज प्रदान करें, हमें पुत्र पौत्रादि परिवार दें और हमको अपनी महत्ता से उच्च कर्मों वाला बनावें ॥२॥

अब उषाकाल में जागृति वाले पुरुष के लिये फल कथन करते हैं ॥

(122) एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः।
जनयंतो दैव्यानि व्रतान्यापृणंतो अंतरिक्षा व्यस्थुः ॥३॥

पदार्थः—(उषसः) प्रातःकाल की उषा के (चित्राः) जो चित्र (दर्शतायाः) दृष्टिगत होते हैं (एते, त्ये) वे सब (भानवः) सूर्य की रश्मियों द्वारा (अमृतासः) अमृतभाव को (आ, अगुः) भले प्रकार प्राप्त होते हैं, और (दैव्यानि) दिव्य भावों को (जनयंतः) उत्पन्न करते हुए (अंतरिक्षा, वि, अस्थुः) एक ही अंतरिक्ष में बहुत प्रकार से स्थिर होकर (व्रतानि, आपृणंतः) व्रतों को धारण करते हैं ॥३॥

भावार्थ—"उषा" सूर्य की रश्मियों का एक पुंज है। जब वह रश्मियें इकट्ठी होकर पृथिवीतल पर पड़ती हैं तब एक प्रकार का अमृत भाव उत्पन्न करती हुई कई प्रकार के व्रत धारण कराती हैं अर्थात् नियमपूर्वक सन्ध्या करने वाले उषाकाल में सन्ध्या के व्रत को और नियम से हवन करने वाले हवन व्रत को धारण करते हैं; इसी प्रकार सूर्य्योदय होने पर प्रजाजन नाना प्रकार के व्रत धारण करके अमृत भाव को प्राप्त होते हैं। अतएव मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह प्रातः उषाकाल में अपने व्रतों को पूर्ण करे, व्रतों का पूर्ण करना ही अमृतभाव को प्राप्त होना है ॥३॥

अब उषा को रूपकालंकार से वर्णन करते हैं ॥

(133) एषा स्या युजाना पराकात्पंच क्षितीः पार सद्यो जिगाति।
अभिपश्यंती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥४॥

पदार्थः—(एषा) यह उषा (जनानां) मनुष्यों को (वयुना) प्राप्त होकर (अभिपश्यन्ती) भले प्रकार देखती हुई (दिवः, दुहिता) द्युलोक की कन्या और (भुवनस्य, पत्नी) संसार की पत्नी रूप है। (स्या) वह उषा (युजाना, स्या) योग को प्राप्त होती हुई (पराकात्) दूर देश से (पंच, क्षितीः) पृथिवी-

स्थ पाँच प्रकार के मनुष्यों को (परि सद्यः) सदा के लिये (जिगाति) जागृति उत्पन्न करती है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उषा को द्युलोक की कन्या और संसार की पत्नी-स्थानीय माना गया है, जिसका तात्पर्य यह है कि इसको द्युलोक से उत्पन्न होने के कारण "कन्या" और पृथिवीलोक पर आकर सर्वभोग्या=सब के भोगने योग्य होने से "पत्नी" कथन की गई है। उषा में पत्नीभाव का आरोप करने से तात्पर्य यह है कि यह प्रतिदिन प्रातःकाल सब संसारी जनों को उद्बोधन करती है कि तुम उठकर जागो, परमात्मा में जुड़ो और अपनी दिनचर्या में प्रवृत्त होकर अपने-अपने कार्यों को विधिवत् करो, यह मन्त्र का भाव है। पृथिवीस्थ पाँच प्रकार के मनुष्यों का वर्णन पीछे कर आये हैं इसलिये यहां आवश्यकता नहीं ॥४॥

अब उषा को अन्नादि ऐश्वर्य की देने वाली कथन करते हैं ॥

(28) वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम् ।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥५॥

पदार्थः—(उषाः) यह उषा देवी (वाजिनीवती) अन्नादि पदार्थों के देने वाली (चित्रामघा) नाना प्रकार के ऐश्वर्य वाली (वसूनां, रायः, ईशे) वसुओं के धन की स्वामिनी (मघोनी) ऐश्वर्य वाली (वह्निभिः) याज्ञिक कर्मों में प्रेरक (ऋषिस्तुता) ऋषियों द्वारा स्तुति को प्राप्त और (उच्छति) प्रकाश को प्राप्त होकर (जरयंती) अन्धकारादि दोषों को निवृत्त करती हुई (सूर्यस्य, योषा) सूर्य के स्त्रीभाव को (गृणाना) ग्रहण करती है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में रूपकालंकार से उषा को सूर्य की स्त्री वर्णन किया गया है, जिसका तात्पर्य्य यह है कि प्रातःकाल पूर्वदिशा में जो रक्त-वर्ण की दीप्ति सूर्योदय के समय उत्पन्न होती है उसका नाम "उषा" है द्युलोक उसका पिता-स्थानीय और सूर्य्य पतिस्थानीय माना गया है, क्योंकि वह द्युलोक में उत्पन्न होती है और सूर्य्य उसका भोक्ता होने के कारण उसका पतिरूप से वर्णन किया है, या यों कहो कि सूर्य्य की रश्मिरूप उषा सूर्य्य की शोभा को बढ़ाती है और सदैव उसके साथ रहने के कारण उसको योषारूप से वर्णन किया गया है, और जो कई एक मन्त्रों में उषा को सूर्य्य की पुत्री वर्णन किया गया है वह द्युलोक के भाव से है सूर्य्य के अभिप्राय से नहीं ॥५॥

प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ॥६॥

पदार्थः—(उषसं) उषाकाल को (वहन्तः) धारण करता हुआ सूर्य (विश्वपिशा) संसार के अन्धकार को मर्दन करने वाले (शुभ्रा) सुन्दर (रथेन) वेग से (याति) गमन करता और (रत्नं, दधाति) रत्नों को धारण

करता हुआ (जनाय) मनुष्यों के लिये (विधते) विभाग करता है (चित्राः, अश्वाः) जिसमें विचित्र वेगवाली किरण (अदृश्रन्) देखी जाती हैं, और जो (प्रति, द्युतानां) प्रत्येक दीप्ति के लिए (अरुषासः) प्रकाश करने वाली हैं ॥६॥

भावार्थः—उषाकाल का आश्रय सूर्य प्रत्यक्ष रूप से नाना प्रकार की किरणों को धारण करता हुआ संसार में अव्याहत गति होकर विचरता है और उसकी दीप्ति से नानाप्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं इसको रत्नों का विभाग करने वाला कथन किया गया है अर्थात् सूर्य के प्रकाश होने पर ही सब प्राणिवर्ग अपना-अपना भरण-पोषण करते और कर्मानुसार रत्नादि धनों की प्राप्ति में प्रवृत्त होते हैं ॥६॥

स॒त्या स॒त्येभि॑र्मह॒ती म॒हद्भि॑र्दे॒वी दे॒वेभि॑र्यज॒ता यज॑त्रैः ।
रु॒जद्दृ॒ळ्हानि॒ दद॑दु॒स्रिया॑णां॒ प्रति॒ गाव॒ उ॒षसं॑ वावशंत ॥७॥

पदार्थः—(देवी) दिव्यगुणयुक्त (सत्या) सत्यरूपा (सत्येभिः) सत्यवादियों से मान को प्राप्त (महती) बड़ी (महद्भिः, देवेभिः, यजता) बड़े-बड़े विद्वानों से वर्णित (यजत्रैः) याज्ञिक लोगों से सेवित (दृह्लानि, रुजत्) बड़े अन्धकार को दूर करने वाली (उस्रियाणां, प्रति) अधिकारियों के प्रति (गावः, ददत्) किरणों को देने वाली (उषसं) उषा की (वावशंत) सब प्राणी कामना करते हैं ॥७॥

भावार्थः—इस मंत्र में "उषा" का महत्त्व वर्णन किया गया है, क्योंकि विद्वान् लोग,उषाकाल में ही परमात्मा की स्तुति करते, बड़े-बड़े याज्ञिक, महात्मा इसी काल में यज्ञ करते, गोपाल लोग गौओं का सत्कार करते और सब कर्मकाण्डी पुरुष उषाकाल की इच्छा करते हैं, क्योंकि इसी काल में वैदिक कर्मों का प्रारम्भ होता है अर्थात् सन्ध्या, अग्निहोत्र, जब तप आदि सब अनुष्ठान इसी काल में किये जाते हैं, इसलिये यह उषा सब के कामना करने योग्य है ॥७॥

अब उषाकाल में प्रार्थना का विधान कथन करते हैं ॥

नू नो॒ गोम॑द्वी॒रव॑द्धेहि॒ रत्न॒मुषो॒ अश्वा॑वत्पुरु॒भोजो॑ अ॒स्मे ।
मा नो॑ ब॒र्हिः पु॑रु॒षता॑ नि॒दे क॑र्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥८॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (अस्मे) हमारे लिये (अश्वावत्) अश्वों वाले यान दें (पुरुभोजः) अनेक प्रकार के भोग प्रदान करें (नु) निश्चय करके (नः) हमको (गोमत्, वीरवत्) पुष्ट इन्द्रियोंवाले वीर पुरुष और (रत्नं, उषः) रत्न तथा ऐश्वर्य्य (धेहि) प्रदान करें, और (पुरुषता) पुरुषसमूह में (नः) हमारे (बर्हिः) यज्ञ की (निदे) निन्दा (मा) मत (कः) हो और (नः) हमको (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) स्वस्तिवाचनों से (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥८॥

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे याज्ञिक तथा विद्वान् पुरुषो ! तुम सदा उषाकाल में यह प्रार्थना करो कि हे भगवन् ! आप हमें विविध प्रकार के यानादि पदार्थ और दृढ़ इन्द्रियोंवाली पुत्र, पौत्रादि सन्तति प्रदान करें, हमारे यज्ञ की कोई निन्दा न करे प्रत्युत सब अनुष्ठानी बनकर हमारे सहकारी हों, हम निन्दित कर्मों के अपयश से सदैव भयभीत रहें, आप ऐसी कृपा करें कि हम आप से प्रार्थना करते हुए सदा अपना कल्याण ही देखें। यह उपासक की प्रार्थना करने का प्रकार है ॥८॥

यह सप्तम मण्डल में पचहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

ऋग्वेदः मं० (७) सू० (७६)

अथ सप्तर्चस्य षट्सप्ततितमस्य सूक्तस्य १—७ वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ४, ५, ६, ७—निचृत्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब उषा=ब्राह्ममुहूर्त में यज्ञकर्मानन्तर परमात्मा की स्तुति करना कथन करते हैं ॥

(१२८) उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत् ।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविरकर्भुवनं विश्वमुषाः ॥१॥

पदार्थः—(ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप (अमृतं) मृत्युरहित (विश्वजन्यं) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आदि कारण (विश्वानरः) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्यापक (सविता) सब का उत्पत्ति स्थान (देवः) दिव्यगुणस्वरूप परमात्मा का हम लोग (अश्रेत्) आश्रयण करें, जो (देवानां) विद्वानों को (क्रत्वा) शुभ मार्गों में प्रेरित करके (अजनिष्ट) उत्तम फलों को उत्पन्न करता है (भुवनं, विश्वं) सम्पूर्ण भुवनों का (उषाः) प्रकाशक (उत्) और (आविः, चक्षुः) चराचर का चक्षु जो परमात्मदेव है हम उनकी (अकः) स्तुति करें ॥१॥

भावार्थः—इस मंत्र में परमात्मा की स्तुति वर्णन की गई है कि जो परमात्मदेव सब ब्रह्माण्डों में ओतप्रोत हो रहा है और जो सब का उत्पत्तिस्थान तथा विद्वानों को शुभमार्ग में प्रेरित करने वाला है, उसी देव का हम सब को आश्रयण करना चाहिए और उसी की उपासना में हमें संलग्न होना चाहिए, जो चराचर का चक्षु और हमारा पितास्थानीय है ॥१॥

(१२९) प्र मे पन्था देवयाना अदृश्रन्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः ।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात्प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः ॥२॥

पदार्थः—(अमर्धन्तः) सब को अभयदान देने वाला (वसुभिः इष्कृतासः) सूर्य चन्द्रमादि वसुओं से अलंकृत (उषसः) सम्पूर्ण ज्योतियों का (केतुः) शिरोमणि परमात्मा (हर्म्येभ्यः) सुन्दर ज्योतियों में (पुरस्तात्) प्रथम (प्रतीची) पूर्वदिशा को (आ) भले प्रकार (अधि, अगात्) आश्रयण करके (अभूत्) प्रकट होता है उसको (अदृश्रन्) देखकर (प्र) हर्षित हुए उपासक लोग कहते हैं कि (देवयानाः पंथाः) यह देवताओं का मार्ग (मे) मुझे प्राप्त हो ।।२।।

भावार्थः—इस मंत्र में परमात्मा की स्तुति वर्णन की गई है कि जब उपासक प्रथम परमात्मज्योति को देख कर ध्यानावस्थित हुआ, उस परमात्मदेव का ध्यान करता और ध्यानावस्था में उस ज्यति को सम्पूर्ण चन्द्रमादि वसुओं से अलंकृत सब से शिरोमणि पाता है तब मुक्तकंठ से यह कहता है कि देवताओं का यह मार्ग मुझ को प्राप्त हो, या यों कहो कि परमात्मरूप दिव्यज्योति जो सब वसुओं में देदीप्यमान हो रही है उस का ध्यान करने वाले उपासक देवमार्ग द्वारा अमृतभाव को प्राप्त होते हैं, इसी भाव को "प्राची दिगग्निरधिपति०" इत्यादि सन्ध्या मंत्रों में वर्णन किया है–प्राची आदि दिशाओं तथा उपदिशाओं का अधिपति एक परमात्मदेव ही है जो हमारा रक्षक, शुभकर्मों में प्रेरक और सम्पूर्ण ऐश्वर्य का दाता है उसी की उपासना करनी योग्य है अन्य की नहीं ।।२।।

तानीदहा॑नि बहुलान्या॑सन्या प्राचीन॒मुदि॑ता॒ सूर्य॑स्य ।
यत॒ः परि॑ जा॒र इ॑वा॒चर॒न्त्युषो॑ ददृक्षे न पुन॑र्य॒तीव॑ ।।३।।

पदार्थः—(तानि, इत्, अहानि) वह दिन के समान प्रकाशरूप (बहुलानि) अनेक प्रकार के तेज (आसन्) दृष्टिगत होते हैं (या) जो (सूर्यस्य) स्वतः प्रकाश परमात्मा के (प्राचीनं) प्राचीन स्वरूप को (उदिता) प्राप्त हैं (यतः) जिससे (परिजारः, इव) अग्नि के समान (उषः) तेज (आचरंती) निकलते हुए (ददृक्षे) देखे जाते हैं (यतीव) व्यभिचारी पदार्थों के समान (पुनः न) फिर नहीं ।।३।।

भावार्थः—जिस प्रकार अग्नि से सहस्रों प्रकार की ज्वालायें उत्पन्न होती रहती हैं इसी प्रकार स्वतःप्रकाश परमात्मा के स्वरूप से तेज की रश्मियां सदैव देदीप्यमान होती रहती हैं, या यों कहो कि स्वतःप्रकाश परमात्मा की ज्योति सदैव प्रकाशित होती रहती है, जैसे पदार्थों के अनित्यगुण उन पदार्थों से पृथक् हो जाते वा नाश को प्राप्त हो जाते हैं इस प्रकार परमात्मा के प्रकाशरूप गुण का उस से कदापि वियोग नहीं होता अर्थात् परमात्मा के गुण विकारी नहीं, यह इस मंत्र का भाव है ।।३।।

अब ब्रह्मवेत्ता विद्वानों का कर्तव्य कथन करते हैं ।।

तइद्दे॒वानां॑ सध॒माद॑ आसन्नृ॒तावा॑नः क॒वयः॑ पू॒र्व्यासः॑ ।
गू॒ळ्हं ज्योतिः॑ पि॒तरो॒ अन्व॑विन्दन्त्स॒त्यम॑न्त्रा अजनयन्नु॒षास॑म् ।।४।।

पदार्थः—(देवानां, सधमादः) विद्वानों के समुदायरूप यज्ञ में (इत्, इत्) वह ही (ऋतावानः) सत्यवादी (कवयः) कवि (पूर्व्यासः) प्राचीन (आसन्) मानें जाते थे जो (गूळ्हं) गहन ज्योतिप्रकाश परमात्मा को (अनु, अविन्दन्) भले प्रकार जानते थे, (सत्यमंत्राः) वह सत्य का उपदेश करने वाले (पितरः) पितर (उषसं) परमात्मप्रकाश को (अजनयन्) प्रकट करते थे ।।४।।

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! विद्वानों के यज्ञ में वही सत्यवादी, वही कवि, वही प्राचीन उपदेष्टा और वही पितर माने जाते हैं जो परमात्मा के गुप्तभाव को प्रकाशित करते हैं अर्थात् विद्वत्ता तथा कवित्व उन्हीं लोगों का सफल होता है जो परमात्मा के गुणों को कीर्तन द्वारा सर्वसाधारण तक पहुंचाते हैं ।।४।।

(132) समान ऊर्वे अधि संगतासः संजानते न यतंते मिथस्ते ।
ते देवानां न मिनंति व्रतान्यमर्धंतो वसुभिर्यादमानाः ।।५।।

पदार्थः—(देवानां) जो विद्वानों के (व्रतानि) व्रतों को (न, मिनन्ति) नहीं मेटते (ते) वे (अमर्धन्तः) अहिंसक होकर (वसुभिः) वेदवाणी रूपी धनों से (यादमानाः) यात्रा करते हुए (मिथः) परस्पर मिलकर (यतंते) यत्न करते हैं (ते) वे (संजानते) प्रतिज्ञा ही (न) नहीं करते किन्तु (संगतासः) संगत होकर (अधि, ऊर्वे) बलपूर्वक इन्द्रियों के संयम में (समाने) समान भाव से यत्न करते हैं ।।५।।

भावार्थः—जो पुरुष विद्वानों के नियमों का पालन करते हुए अहिंसक होकर अर्थात् अहिंसादि पांच नियमों का पालन करते हुए संसार में विचरते हैं वह यत्नपूर्वक अपने अभीष्ट फल को प्राप्त होते हैं या यों कहो कि वैदिक नियमों का वही पुरुष पालन करते हैं जो अहिंसक होकर वेदवाणी का प्रचार करते और आपस में समान भाव से इन्द्रियों का संयम करते हुए औरों को ब्रह्मचर्यव्रत का उपदेश करते हैं, स्मरण रहे कि उपदेश उन्हीं का सफल होता है जो अनुष्ठानी बनकर यात्रा करते हैं अन्यों का नहीं ।।५।।

अब उषा काल में अनुष्ठान का विधान करते हैं ।।

(133) प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।
गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ।।६।।

पदार्थः—(उषः, बुधः) उषाकाल में जागने वाले (वसिष्ठाः) विद्वान् (स्तोमैः) यज्ञों द्वारा (त्वा, प्रति) तेरे लिये (ईळते) स्तुति करते हैं (सुभगे) हे सौभाग्य के देने वाली (गवां, नेत्री) तू इन्द्रियों को संयम में रखने के कारण (तुष्टुवांसः) स्तुति योग्य है (वाजपत्नी) हे सब प्रकार के ऐश्वर्य की स्वामिनी (जरस्व) अन्धकार को जलाकर (नः) हमारे लिये (उच्छ, उषः)

अच्छा प्रकाश कर क्योंकि तू (प्रथमा) सब दीप्तियों में मुख्य (सुजाते) सुन्दर प्रादुर्भाव वाली है ।।६।।

भावार्थः - इस मन्त्र में रूपकालंकार से उषाकाल का वर्णन करते हुए परमात्मा उपदेश करते हैं कि जो पुरुष उषाकाल में उठकर सन्ध्यावन्दन तथा हवनादि अनुष्ठानादि कार्यों में प्रतिदिन प्रवृत्त रहते हैं वह सब धनों के देने वाली तथा इन्द्रियसंयम के मुख्य साधनरूप उषाकाल से परमलाभ उठाते हैं अर्थात् जो पुरुष अपनी निद्रा त्याग उषाकाल में उठकर अपने नित्यकर्मों में प्रवृत्त होते हैं वह सौभाग्यशाली पुरुष इन्द्रियों का संयम करते हुए ऐश्वर्यशाली होकर सब प्रकार का सुख भोगते हैं, क्योंकि इन्द्रियसंयम का मुख्य साधन उषाकाल में ब्रह्मोपासन है, इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि जब पूर्वदिशा में सूर्य की लाली उदय हो उसी काल में ब्रह्मोपासन रूप अनुष्ठान करें ।।६।।

अब उषाकाल में स्वस्तिवाचनों द्वारा परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ।।

एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः ।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।७।।

पदार्थः—(एषा, उषाः) यह उषा काल (राधसः, नेत्री) आराधनशील विद्वानों के मार्ग को (सूनृतानां) वेदवाणियों द्वारा (उच्छन्ती) प्रकाश करनेवाला (वसिष्ठैः, रिभ्यते) सर्वोपरि गुणसम्पन्न विद्वानों से स्तुति योग्य है, इसी काल में (दीर्घश्रुतं) चिरकालीन सर्वज्ञाता परमात्मा (अस्मे) हमें (रयिं, दधाना) धन प्राप्त करायें, और (नः) हमारे धन को (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) स्वस्तिवाचनों से (सदा) सदा (पात) रक्षा करें ।।७।।

भावार्थः—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे विचारशील विद्वानो ! तुम उषाकाल में अपने कर्तव्य कर्मों से निवृत्त होकर स्वस्तिवाचनों से प्रार्थना करो कि आप हमें और हमारे यजमानों को ऐश्वर्यसम्पन्न करें और आपका दिया हुआ ऐश्वर्य पवित्र हो ।।७।।

यह सप्तम मण्डल में छिहत्तरवाँ सूक्त समाप्त हुआ ।।

ऋग्वेदः मं० (७) सू० (७७)

अथ षड्ऋचस्य सप्तसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—६ *वसिष्ठ ऋषिः* ।। *उषा देवता* ।। *छन्दः*—१ *त्रिष्टुप्* । २, ३, ४, ५ *निचृत् त्रिष्टुप्* । ६ *विराट् त्रिष्टुप्* ।। *धैवतः स्वरः* ।।

अब परमात्मा को चराचर जीवों की जननी रूप से कथन करते हैं ।।

उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै ।

अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि ॥१॥

पदार्थः—(तमांसि) अज्ञानरूप तम को (बाधमाना) नाश करती हुई (अग्निः ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप ज्योति (मानुषाणां, समिधे, अकः) मनुष्यों के सम्बन्ध में प्रकट हुई, जिसने (प्रसुवंती) प्रसूतावस्था में (विश्वं, चराथै, जीवं) विश्व के चराचर जीवों को (अभूत्) प्रकट किया, वह ज्योति (उषो) इस संसार में (युवतिः) युवावस्थावाली (रुरुचे) प्रकाशित हुई (न योषा) स्त्री के समान नहीं ॥

भावार्थः—इस मंत्र में परमात्मा को ज्योतिरूप से वर्णन किया गया है अर्थात् जगज्जननी ज्योतिरूप परमात्मा जो जीवमात्र का जन्मदाता है उसने आदि सृष्टि में विश्व के चराचर जीवों को युवावस्था में प्रकट किया, और वह परमात्मारूप शक्ति भी युवावस्था में प्रकट हुई स्त्री के समान नहीं ॥१॥

विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद्रुशद्वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत् ।

हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृग्गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ।२॥

पदार्थः—(सप्रथा) सब प्रकार से (विश्व) सम्पूर्ण विश्व को (प्रतीची) प्रथम (अस्मात्) उत्पन्न करनेवाली (रुशत्) दिव्य शक्ति (वासः) उस दीप्ति-वाले स्वरूप (उत्) और (शुक्रं) बल को (बिभ्रती) धारण करती हुई जो (अश्वैत्) सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है, (हिरण्यवर्णा) दिव्यस्वरूप (सुदृशीक) सर्वोपरि दर्शनीय (संदृक्) सर्वज्ञात्री (गवां, माता) सब ब्रह्माण्डों की जननी और (अह्नां, नेत्री) सूर्यादि सब प्रकाशों की प्रकाशक (अरोचि) सब को प्रका-शित कर रही है ॥२॥

भावार्थः—जो दिव्य शक्ति सम्पूर्ण विश्व को धारण करके कोटानुकोटि ब्रह्माण्डों को चला रही है वही दिव्य शक्तिरूप परमात्मा सब ब्रह्माण्डों की जननी और वही सब का अधिष्ठान होकर स्वयं प्रकाशमान हो रहा है ॥२॥

अब उस दिव्य शक्ति को सम्पूर्ण विश्व का आधार कथन करते हैं ॥

देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम् ।

उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता ॥३॥

पदार्थः—(देवानां, चक्षुः) सब दिव्य शक्तियों की प्रकाशक (सुभगा) सर्वैश्वर्यसम्पन्न (श्वेतं, अश्वं, वहंती) श्वेतवर्ण के गतिशील सूर्य को चलानेवाली (सुदृशीकं) सर्वोपरिदर्शनीय (अदर्शि, रश्मिभिः, नयंती) नहीं देखे जाने वाली रश्मियों की चालिका (व्यक्ता) सब में विभक्त (चित्रामघा) नाना प्रकार के ऐश्वर्य से सम्पन्न (उषः) परमात्मरूप शक्ति (विश्वं) सम्पूर्ण संसार को (अनु) आधेय रूप से आश्रय करके (प्रभूता) विस्तृतरूप से विराजमान हो रही है ॥३॥

भावार्थः—जो दिव्यशक्ति सूर्यादि सब तेजों का चक्षुरूप, सब प्रकाशक ज्योतियों को प्रकाश देनेवाली, गतिशील सूर्य चन्द्रादिकों को चलानेवाली और जो सम्पूर्ण संसार को आश्रय करके स्थित हो रही है वही दिव्य शक्ति सम्पूर्ण विश्व का अधिष्ठान है ।।३।।

अब उक्त ऐश्वर्य्यसम्पन्न परमात्मा से शत्रु निवारण तथा सब प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्ति की प्रार्थना कथन करते हैं ।।

अंतिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूंतिमभयं कृधी नः ।

यावय द्वेष आ भंरा वसूंनि चोदय राधों गृणते मंघोनि ।।४।।

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (अन्तिवामा) आप हमें अन्न तथा पशुओं से सम्पन्न करें अर्थात् प्रशस्तसमृद्धि युक्त करें "वाम इति प्रशस्तनामसु पठितम् (निघण्टु ३।८)" (अमित्रं, दूरे उच्छ) हमारे शत्रुओं को हमसे दूर करें (उर्वीं, गव्यूतिं) विस्तृत पृथ्वी का हमको अधिपति बनावें (नः) हमको (अभयं, कृधि) भयरहित करें (मघोनि) हे दिव्यशक्तिसम्पन्न भगवन् ! (गृणते) आप अपने उपासकों को (राधः) ऐश्वर्य की ओर (चोदय) प्रेरित करें और (यवय, द्वेषः) हमारे द्वेष दूर करके (वसूनि, आ, भर) सम्पूर्ण धनों से हमें परिपूर्ण करें ।।४।।

भावार्थः—हे सब धनों से परिपूर्ण तथा ऐश्वर्यसम्पन्न स्वामिन् ! आप हमें अन्न तथा गवादि पशुओं का स्वामी बनावें, आप हमें विस्तीर्ण भूमिपति बनावें, हमारे शत्रुओं को हम से दूर करके सब संसार का हमें मित्र बनावें अर्थात् द्वेषबुद्धि को हम से दूर करें जिससे कोई भी हमसे शत्रुता न करे । अधिक क्या आप उपासकों को शीलसम्पन्न करें, सब प्रकार का धन दें जिससे हम लोग निरन्तर आपकी उपासना तथा आज्ञापालन में तत्पर रहें । ४।।

अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्युषो देवि प्रतिरंती न आयुः ।

इषं च नो दधंती विश्ववारे गोमदश्वावद्रथंवच्च राधः ।।५।।

पदार्थः—(उषः, देवि) हे ज्योतिस्वरूप तथा दिव्यगुणसम्पन्न परमेश्वर ! (अस्मे) हमें (श्रेष्ठेभिः, भानुभिः) सुन्दर प्रकाशों से (विभाहि) भले प्रकार प्रकाशयुक्त करें (नः) हमारी (आयुः, प्रतिरंती) आयु को बढ़ावें (विश्ववारे) हे विश्व के उपास्य देव ! (नः) हमें (इषं) ऐश्वर्य (दधती) धारण करावें (च) और (गोमत्) गौओं से युक्त (अश्ववत्) अश्वों वाला (रथवत्) यानोंवाला (च) और (राधः) सम्पूर्ण धनों वाला करें ।।५।।

भावार्थः—मन्त्र का भाव स्पष्ट है, इसमें यह वर्णन किया है कि हे परमात्मन् ! आप हमे दीर्घ आयु दें और सब प्रकार के ऐश्वर्यों से सम्पन्न करें ।।५।।

अब वेदवेत्ता ऋषियों द्वारा प्रार्थना कथन करते हैं ।।

ऋग्वेदः मं० (७) सू० (७७)

(८०) यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।
सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थः—(दिवः, दुहितः) द्युलोक की दुहिता (उषः) उषा के (वर्धयन्ति) उदय होने पर अथवा बढ़ने पर (मतिभिः, वसिष्ठाः) बुद्धिमान् ऋषि लोग (सुजाते) सुजन्मवाली उषा को लक्ष्य रख कर भले प्रकार परमात्मा को ज्ञानगोचर करके (यां त्वा) जिस आपका ध्यान करते हैं, (सा) वह आप (अस्मासु) हम लोगों को (ऋष्वं) ऐश्वर्य्ययुक्त करें, (बृहंतं, रयिं) सब से बड़े धन को (धाः) धारण करावें और (नः) हमको (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) कल्याणयुक्त वाणियों से (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥६॥

भावार्थः—हे परमात्मा ! उषाकाल में विज्ञानी ऋषि महात्मा अपनी ब्रह्म-विषयिणी बुद्धि द्वारा आप को ज्ञानगोचर करते हुए आपका ध्यान करते हैं, वह आप हमारे पूजनीय पिता हमें धनसम्पन्न तथा ऐश्वर्ययुक्त करते हुए सब प्रकार से हमारा कल्याण करें ॥६॥

यह सप्तम मण्डल में सतहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

ऋग्वेदः मं० (७) सू० (७८)

अथ पञ्चर्चस्य अष्टसप्ततितमस्य सूक्तस्य १—५ वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा-देवता ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३, ४, निचृत्त्रिष्टुप् ॥ ५ विराट्त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब परमात्मा का स्वरूप वर्णन करते हैं ॥

(८१) प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते ।
उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि ॥१॥

पदार्थः—हे परमात्मन्, (अस्याः) आपकी इस महती शक्ति के (प्रथमाः) पहले (केतवः) अनेक हेतु (ऊर्ध्वाः) सब से ऊंचे (प्रति) हमारे प्रति (अंजयः) प्रसिद्ध (अदृश्रन्) देखे जाते हैं अर्थात् हमें स्पष्ट दिखाई देते हैं जो (विश्रयंते) विस्तार-पूर्वक फैले हुए हैं (उषः) हे ज्योतिस्वरूप भगवन् ! (अर्वाचा) आप हमारे सन्मुख आयें अर्थात् हमें अपने दर्शन का पात्र बनायें, और (ज्योतिष्मता) अपने तेजस्वी (बृहता) बड़े (रथेन) ज्ञान से (अस्मभ्यं) हमको (वामं) ज्ञानरूप धन (वक्षि) प्रदान करें ॥१॥

भावार्थः—जब हम इस संसार में दृष्टि फैलाकर देखते हैं तो सब से पहले परमात्मस्वरूप को बोधन करनेवाले अनन्त हेतु इससंसार में हमारे दृष्टिगत होते हैं जो सबसे उच्च परमात्मस्वरूप को दर्शा रहे हैं, जैसा कि संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय

और यह अद्‌भुत रचना आदि चिह्नों से स्पष्टतया परमात्मा के स्वरूप का बोधन होता है, हे सर्वशक्तिसम्पन्न भगवन् ! आप अपने बड़े तेजस्वी स्वरूप का हमें ज्ञान करायें जिससे हम अपने आपको पवित्र करें ॥१॥

अब परमात्मस्वरूप का महत्त्व कथन करते हैं ॥

प्रति षीम॒ग्निर्जर॑ते॒ समि॑द्धः॒ प्रति॒ विप्रा॑सो म॒तिभि॑र्गृ॒णन्तः॑ ।
उ॒षा या॑ति॒ ज्योति॑षा॒ बाध॑माना॒ विश्वा॒ तमां॑सि दुरि॒ताप॑ दे॒वी ॥२॥

पदार्थः—(देवी) परमात्मा का दिव्यस्वरूप (दुरिता, अप) पापों को दूर करता, तथा (विश्वा, तमांसि) सब के अज्ञानों को (बाधमाना) निवृत्त करता हुआ (ज्योतिषा) अपने ज्ञान से (उषाः) उच्च गति को (याति) प्राप्त है । (विप्रासः) वेद-वेत्ता ब्राह्मण उसको (मतिभिः) स्व बुद्धियों से (गृणंतः) ग्रहण करते हैं । (प्रति) उनको परमात्मस्वरूप (समिद्धः) सम्यक् रीति से प्रकाशित होता, और (अग्निः) ज्योतिस्वरूप परमात्मा (सीं) भलीभांति (प्रति, जरते) प्रत्येक पदार्थ में व्यापकभाव से प्रकाशित हो रहा है ॥२॥

भावार्थः—ज्ञानस्वरूप परमात्मा का दिव्यस्वरूप सदैव प्रकाशमान हुआ अज्ञानरूप अंधकार को निवृत्त करके ज्ञानरूप ज्योति का विस्तार करता अर्थात् उषारूप ज्योति के समान उच्चभाव को प्राप्त होता है, वह वेदवेत्ता ब्राह्मणों की बुद्धि का विषय होने से उनके प्रति प्रकाशित होता अर्थात् वे परमात्मस्वरूप को अपनी निर्मल बुद्धि से भलीभांति अवगत करते हैं । अधिक क्या, उसका दिव्यस्वरूप संसार के प्रत्येक पदार्थ में ओतप्रोत हो रहा है, इसलिए सब पुरुषों को उचित है कि वह परमात्मस्वरूप को अपने-अपने हृदय में अवगत करते हुए अपने जीवन को उच्च बनावें, अर्थात् जिस प्रकार उषा काल अन्धकार को निवृत्त करके प्रकाशमय हो जाता है इसी प्रकार परमात्मा अज्ञानरूप अन्धकार को दूर करके अपने प्रकाश से विद्वानों के हृदय को प्रकाशित करता है ॥२॥

(१८३) ए॒ता उ॒ त्याः प्रत्य॑दृश्रन् पु॒रस्ता॒ज्ज्योति॒र्यच्छ॑न्तीरु॒षसो॑ विभा॒तीः ।
अजी॑जन॒न्त्सूर्यं॑ य॒ज्ञम॒ग्निम॑पा॒चीनं॒ तमो॑ अगा॒दजु॑ष्टम् ॥३॥

पदार्थः—(उषसः) ज्ञानस्वरूप परमात्मा (ज्योतिः, यच्छंतीः) ज्ञान का प्रकाश करता हुआ (विभातीः) प्रकाशित होता, और उसका ज्ञान (प्रति) मनुष्यों के प्रति (पुरस्तात्, अदृश्रन्) सब से पूर्व देखा जाता है, (एताः त्याः) ये परमात्मशक्तियां (सूर्यं, यज्ञं, अग्निं) सूर्य, यज्ञ तथा अग्नि को (अजीजनन्) उत्पन्न करती (उ) और (अजुष्टं, तमः) अप्रिय तम को (अपाचीनं) दूर करके (अगात्) ज्ञानरूप प्रकाश का विस्तार करती हैं ॥३॥

भावार्थः—ज्ञानस्वरूप परमात्मा का ज्ञान सब से पूर्व देखा जाता है । वह अपने ज्ञान का विस्तार करके पीछे प्रकाशित होता है, क्योंकि उसके जानने के लिए

पहले ज्ञान की आवश्यकता है और उसी परमात्मा से सूर्य चन्द्रादि दिव्य ज्योतियां उत्पन्न होतीं, उसी से यज्ञ का प्रादुर्भाव होता और उसी से अग्नि आदि तत्त्व उत्पन्न होते हैं, वही परमात्मा अज्ञानरूप तम का नाश करके सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अपने ज्ञानरूप प्रकाश का विस्तार करता है, इसलिए सब का कर्त्तव्य है कि उसी ज्ञानस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होकर ज्ञान की वृद्धि द्वारा अपने जीवन को उच्च बनावें ॥३॥

(१४४) **अचे॑ति दि॒वो दु॑हि॒ता म॒घोनी॒ विश्वे॑ पश्यन्त्यु॒षसं॑ विभा॒तीम् ।**

आस्था॒द्रथं॑ स्व॒धया॑ यु॒ज्यमा॑न॒मा यमश्वा॑सः सु॒युजो॒ वह॑न्ति ॥४॥

पदार्थः—(सुयुजः) सुन्दर दीप्तिवाली परमात्मशक्तियां (अश्वासः) शीघ्र गति द्वारा (यं, रथं:) जिस रथ को (आ) भले प्रकार (वहंति) चलाती हैं, उससे (युज्यमानम्) जुड़ी हुई (दिवः, दुहिता) द्युलोक की दुहिता (उषसं) उषा को (विश्वे, (पश्यंति) सब लोग देखते हैं, जो (अचेति) दिव्यज्योतिसम्पन्न (मघोनी) ऐश्वर्यशाली (विभाती) प्रकाशयुक्त (स्वधया) अन्नादि पदार्थों से सम्पन्न, और जो (आ) भले प्रकार (अस्थात्) दृढ़तावाली है ॥४॥

भावार्थः—मन्त्र का आशय यह है कि इस ब्रह्माण्ड रूपी रथ को परमात्मा की दिव्यशक्तियां चलाती हैं, उसी रथ में जुड़ी हुई द्युलोक की दुहिता उषा को विज्ञानी लोग देखते हैं जो अन्नादि ऐश्वर्यसम्पन्न बड़ी दृढ़तावाली है, इस शक्ति को देखकर विज्ञानी महात्मा इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा का अनुभव करते हुए उसी की उपासना में प्रवृत्त होकर अपने जीवन को सफल करते और परमात्मा की अचिन्त्य शक्तियों को विचारते हुए उसी में संलग्न होकर अमृतभाव को प्राप्त होते हैं ॥

अब ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मा की स्तुति कथन करते हुए प्रार्थना करते हैं ॥

(१४५) **प्रति॑ त्वा॒द्य सु॒मन॑सो बुधन्ता॒स्माका॑सो म॒घवा॑नो व॒यं च॑ ।**

ति॒ल्वि॒ला॒य॒ध्व॒मु॒षसो॑ विभा॒तीर्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! (त्वा, प्रति) आपके प्रति (अद्य) आज (सुमनसः) सुन्दर मनों वाले विज्ञानी और (अस्माकासः) हमारे ऋत्विगादि (मघवानः) ऐश्वर्य सम्पन्न आपको (बुधंत) बोधन करते (च) और (वयम्) हम लोग आपके महत्त्व को समझते हैं। हे परमात्मन् ! आप (तिल्विलायध्वं, हम में परस्पर प्रेम भाव उत्पन्न करें क्योंकि आप (उषसः) प्रकाशरूप ज्ञान से (विभातीः) सदा प्रकाशमान हैं। (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) स्वस्तिवाचन रूप वेदवाणियों से (नः) हमको (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थः—हे भगवन् ! आपको शान्तमनवाले योगीजन बोधन करते तथा बड़े-बड़े ऐश्वर्य सम्पन्न आपके यज्ञ को वर्णन करते हैं और आपकी प्रेममय रज्जू

से बंधे हुए भक्तजन आपका सदैव कीर्तन करते हैं, कृपा करके हमको कल्याणरूप वाणियों से सदा के लिए पवित्र करें ॥५॥

सप्तम मण्डल में अठहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

ऋग्वेदः मं० (७) सू० (७९)

अथ पञ्चर्चस्य एकोनाशीतितमस्य सूक्तस्य १—५ वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः-१, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ३ विराट् त्रिष्टुप् । ५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ धैवतः स्वरः ॥

अब परमात्मा की स्वयं प्रकाशता कथन करते हुए उसीसे अज्ञाननिवृत्ति का वर्णन करते हैं ॥

(१४६९) व्यु१॒॑षा आ॑वः प॒थ्या॒३॒॑ जना॑नां॒ पंच॑ क्षि॒तीर्मानु॑षीर्बो॒धयं॑ती ।

सु॒सं॒दृग्भि॑रु॒क्षभि॑र्भा॒नुम॑श्रे॒द्वि सूर्यो॒ रोद॑सी॒ चक्ष॑सा वः ॥१॥

पदार्थः—(सूर्यः) स्वतः प्रकाश परमात्मा (रोदसी) पृथ्वी तथा द्युलोक कि मध्य में (चक्षसा) अपने प्रकाश से (आवः) सबको प्रकाशित करता हुआ (वि, उषाः) अपने विशेष ज्ञान से (पंच, जनानां) पांचों प्रकार के मनुष्यों को (क्षितीः) इस पृथ्वी पर (मानुषीः) मनुष्यता का (बोधयंती) उपदेश कर रहा है, जो (आवः पथ्या) सब के लिए विशेषरूप से पथ्य है, हम सब प्रजाजनों का (वि) विशेषता से मुख्य कर्तव्य है कि हम (उक्षभिः) अत्यन्तबलयुक्त (सुसंदृग्भिः) अपने सत्य ज्ञान से (भानुं, अश्रेत्) उस स्वयंप्रकाश को आश्रयण करें ॥१॥

भावार्थः—वह पूर्ण परमात्मा जो अपनी दिव्य ज्योति से सम्पूर्ण भूमण्डल को प्रकाशित करता हुआ अपने विशेष ज्ञान से "पंच जनाः"=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और दस्यु, इन पांचों प्रकार के मनुष्यों को सत्यज्ञान का उपदेश कर रहा है जो सब के लिए परम उपयोगी है, हमारा कर्तव्य है कि हम यत्नपूर्वक उस स्वतः प्रकाश परमात्मा के स्वरूप को जान कर उसी का आश्रयण करें ॥१॥

(१४७०) व्यं॑जते दि॒वो अंते॑ष्व॒क्तून्विशो॒ न यु॒क्ता उ॒षसो॑ यतन्ते ।

सं ते॒ गाव॒स्तम॒ आ व॑र्तयंति॒ ज्योति॑र्यच्छंति सवि॒तेव॑ बा॒हू ॥२॥

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (दिवः अंतेषु) द्युलोकपर्यन्त प्रदेशों में (अक्तून्) सूर्यादि प्रकाशों के (न) समान (विशः, अंजते) सम्पूर्ण प्रजाओं को प्रकट करते (वि) भले प्रकार (उषसः युक्ताः) प्रकाशयुक्त (यतंते) कर रहे हैं (ते, गावः) तुम्हारा ज्ञानरूप प्रकाश (तमः) अज्ञान रूप तम को (आ) भले प्रकार (वर्तयंति) दूर करता है (सविता, इव, बाहू) सूर्य्य की किरणों के

समान (ज्योतिः) तुम्हारी ज्योति (सं, यच्छंति) सब को प्रकाशित करती है।।२।।

भावार्थः—हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप द्युलोकपर्य्यन्त सम्पूर्ण प्रजाओं को अपनी दिव्य ज्योति से प्रकाशित कर रहे हैं अर्थात् आप अपने ज्ञानरूप तप से प्रजाओं को रचकर सूर्य्य की किरणों के समान अज्ञानरूप तम को छिन्नभिन्न करके मनुष्यों को ज्ञानयुक्त बनाते हैं, जैसाकि "यस्य ज्ञानमयं तपः" इत्यादि उपनिषद्वाक्यों में इसी मन्त्र को आश्रय करके कहा है कि उस परमात्मा का ज्ञान ही एक प्रकार का तप है, उसी ज्ञानरूप तप से परमात्मा इस ब्रह्माण्ड की रचना करके सबको यथावस्थित नियम में चला रहे हैं ।।२।।

अब उस दिव्यज्ञान की प्राप्ति के लिए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ।।

(१४८) अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत्सुविताय श्रवांसि ।
वि दिवो देवी दुहिता दधात्यंगिरस्तमा सुकृते वसूनि ।।३।।

पदार्थः—(इन्द्रतमा) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आपका (वि) विस्तृत ज्ञान (सुविताय) हमारे कल्याणार्थ (उषाः, अभूत्) प्रकाशित हो (मघोनी) हे सर्वैश्वर्य्यसम्पन्न भगवन् ! आप (श्रवांसि) अपनी ज्ञानशक्ति को (अजीजनत्) प्रकाशित करें, हे ज्योतिस्वरूप ! (दिवः, देवी) द्युलोक की देवी (दुहिता) तुम्हारी दुहितारूप दिव्यशक्ति जो (अंगिरः, तमा) अत्यन्त गमनशील तमनाशक है वह (सुकृते) हमारे पुण्यों के लिये (वसूनि, दधाति) धनों को धारण करावे ।।३।।

भावार्थः—हे सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मन् ! आपकी दुहितारूप विद्युतादि शक्तियां हमारे लिये कल्याणकारी होकर हमें अनन्त प्रकाश का धन धारण करावें, और आपका ज्ञान हमारे हृदय को प्रकाशित करे ।।३।।

(१४९) तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत्स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना ।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः ।।४।।

पदार्थः—(उषः) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् (अस्मभ्यं) हम लोगों को (अरदः) प्रथम (तावत् राधः, रास्व) उतना धन प्रदान करें (यावत्) जितने से हम (गृणाना) आपको ग्रहण करने वाले (स्तोतृभ्यः) स्तोता विद्वानों को प्रसन्न कर सकें (यां, त्वा) जो आप को (वृषभस्य, रवेण, जज्ञुः) वृषभ के समान उच्चतर से प्रकट कर रहे हैं अर्थात् आपकी स्तुति करते हैं, और हमारे लिये (दृळस्य दुरः, अद्रेः) दृढ़तायुक्त कठिन से कठिन मार्गों को (वि) भली-भांति (और्णोः) खोल दें ।।४।।

भावार्थः—हे सर्वपालक भगवन् ! हमको ऐश्वर्य्यसम्पन्न करें जिससे हम अपने वेदवेत्ता स्तोता आदि विद्वानों को प्रसन्न करें जो हमारे प्रति आपकी स्तुति

उच्चस्वर से वर्णन करते हैं या यों कहो कि परमात्मस्तुतिकीर्तन करते हुए हमको आपकी उपासना में प्रवृत्त करते हैं, हे भगवन्! आप हम में ऐसी शक्ति प्रदान करें कि हम कठिन से कठिन मार्गों के द्वारों को खोलकर आप का दर्शन कर सकें ॥४॥

अब धनप्राप्ति की प्रार्थना करते हैं ॥

(५५०) देवंदेवं राधसे चोदयंत्यस्मद्र्यक्सूनृता ईरयंती।
व्युच्छंती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थः—हे परमात्मन् (देवं देवं) सब श्रोताओं को (राधसे) धनप्राप्ति के लिये (चोदयन्ती) प्रेरित करें (अस्मद्र्यक्) हम यजमानों को (सूनृताः) उत्तम वेदवाणियों की ओर (व्युच्छंती) उत्साहित करें, और (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (सनये) दान के लिये (धाः) धारण कराते हुए (ईरयंती) उस ओर प्रेरें, जिससे हम दान में समर्थ हों, और (यूयं) आप (स्वस्तिभिः) कल्याणरूप वाणियों से (नः) हमको (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ॥५॥

भावार्थः—हे दिव्यशक्तिसम्पन्न परमात्मन्! आप सब स्तोताओं को धनधान्यादि से भले प्रकार समृद्ध करें, ताकि वह उत्तमोत्तम वेदवाणियों द्वारा आप का सदा स्तवन करते हुए हमारी बुद्धियों को आप की ओर प्रेरित करें, और हे भगवन्! आप हमें दानशील बनावें ताकि हम उत्साहित होकर स्तोता आदि अधिकारियों को दान देने में समर्थ हों, और आप हमें सदा के लिये पवित्र करें, यह प्रार्थना है ॥५॥

सप्तम मण्डल में उनासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

ऋचस्य…ोतितमस्य सूक्तस्य १-३ वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः-१ त्रिष्टुप् २ विराट् त्रिष्टुप् ३-निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ।

अब सब भुवनों तथा दिव्य पदार्थों की रचना परमात्मा से होना कथन करते हैं ॥

(५५१) प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् ।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा ॥१॥

पदार्थः—(विश्वा, भुवनानि) इस संसार के सम्पूर्ण भुवनों की (आविः, कृण्वतीं) रचना करते हुए परमात्मा ने (विप्रासः) वेदवेत्ता ब्राह्मणों को (अबुध्रन्) बोधन किया, और (वसिष्ठाः) उन विशेषगुणसम्पन्न विद्वानों ने (प्रति उषसं) प्रत्येक उषा काल में (स्तोमेभिः, गीर्भिः) यज्ञरूप वाणियों द्वारा परमात्मा का स्तवन किया, और (समंते) अंत समय में (रजसी) रजोगुणप्रधान परमात्मशक्ति (विवर्तयंती) इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को लय करती है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में संसार की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय का वर्णन किया गया है अर्थात् संसार की उक्त तीनों अवस्थाओं का कारण एकमात्र परमात्मा है, वह परमात्मा इस संसार के रचना काल में प्रथम ऋषियों को वेद का ज्ञान देता है जिससे सब प्रजा उस रचयिता परमात्मा के नियमों को भले प्रकार जानकर तदनुसार ही आचरण करते हुए संसार में सुखपूर्वक विचरें, वही परमात्मा सब संसार का पालक पोषक और अंतसमय में वही सब का संहार करने वाला है ॥१॥

(५५२) एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि ।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत्सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥२॥

पदार्थः—(अग्रे) सृष्टि रचना से प्रथम (एषा, गूढ्वी) यह परमात्मा की गुह्यशक्ति (ज्योतिषा, तमः) प्रकाशरूप ज्योति से तम का नाश करके (सूर्यं, यज्ञं, अग्निं) सूर्य, यज्ञ तथा अग्नि को (प्र) भले प्रकार (अचिकितत्) रचती और (उषा, अबोधि) उषा काल का बोधन करती हुई वह (अह्रयाणा, युवतिः) प्रकाशवती सदा युवावस्थासम्पन्न रहती है (स्या) वह शक्ति (नव्यं, आयुः, दधाना) नवीन आयु को धारण करती हुई (एति) उसी परमात्मा में लय हो जाती है ॥२॥

भावार्थः—परमात्मा की दिव्य शक्ति जिससे सृष्टि के आदि काल में पुनः रचना होती है वह परमात्मा की प्रकाशरूप ज्योति से प्रथम अन्धकार का नाश करती है, क्योंकि प्रलयकाल में यह सब संसार अन्धकारमय होता है, तत्पश्चात् सूर्य, अग्नि और यज्ञ को रचकर उषाकाल का बोधन कराती है जिससे सब प्रजागण

ऋग्वेदः मं० (७) सू० (८०)

परमात्मा का स्तवन करते हुए अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं, परमात्मा की उस दिव्य शक्ति में कभी विकार उत्पन्न नहीं होता, वह युवावस्था को प्राप्त हुई मनुष्यों को कर्मानुसार सदा बल, बुद्धि आदि नूतन भावों को प्रदान करती रहती है और अन्त में उसी परमात्मा में लय हो जाती है ।।२।।

अब इस सूक्त के अंत में परमात्मा के दिव्य गुणों का वर्णन करते हुए उससे स्वस्ति की प्रार्थना करते हैं ।।

(१५५३) अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्न उ॒षासो॑ वी॒रव॑ती॒: सद॑मुच्छंतु भ॒द्राः ।
घृ॒तं दुहा॑ना वि॒श्वत॒: प्रपी॑ता यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒: सदा॑ नः ।।३।।

पदार्थः—हे परमात्मन् ! आप (अश्वावतीः) सर्वगतियों का आश्रय (गोमतीः) सब ज्ञानों का आधार (वीरवतीः) सब वीरतादि गुणों का आश्रय हो (नः) हमको (उषसः) प्रकाश वाले (भद्राः) भद्र गुण (सदं) सदा के लिये (उच्छंतु) प्राप्त करायें, आप (विश्वतः) सब ओर से (घृतं) प्रेम को (दुहाना) उत्पन्न करने वाले (प्रपीताः) सब के आश्रय भूत हैं (सदा) सदा (पात) पवित्र करें ।।३।।

भावार्थः—इस मन्त्र मे परमात्मा का वर्णन करते हुए यह कथन किया है कि जिस प्रकार वर्तिका=बत्ती सब ओर से स्नेह=चिकनाई को अपने में लीन करके प्रकाश करती है इसी प्रकार सब प्रेमी पुरुषों को परमात्मा प्रकाश=ज्ञान प्रदान करते हैं, वही परमात्मा वीरता, धीरता, ज्ञान तथा गति आदि सब सद्गुणों का आधार और प्रेममय पुरुषों का एकमात्र गतिस्थान है ।।३।।

सप्तम मण्डल में अस्सीवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

ऋग्वेदः मं० (७) सू० (८१)

अथ षड्चस्य एकाशीतितमस्य सूक्तस्य १-६ वसिष्ठ ऋषिः ।। उषा देवता ।। छन्दः-१ विराड् बृहती । २ भुरिग्बृहती । ३ आर्षीबृहती । ४, ६ आर्षीभुरिग्बृहती । ५ निचृद्बृहती । मध्यमः स्वरः ।।

अब सर्वप्रेरक तथा सर्वप्रकाशक परमात्मा का वर्णन करते हैं ।।

(१५५४) प्रत्यु॑ अदर्श्याय॒त्यु१॒च्छन्ती॑ दुहि॒ता दि॒वः ।
अपो॒ महिं॑ व्ययति॒ चक्ष॑से॒ तमो॒ ज्योति॑ष्कृणोति सू॒नरी॑ ।।१।।

पदार्थः—(ज्योतिः) सब का प्रकाशक (महि) बड़े (तमः) अंधकार को (व्ययति) नाश करने वाला (चक्षसे) प्रकाश के लिये (दिवः, दुहिता) उषा का (प्रति, उ, अदर्शि) प्रत्येक स्थान में प्रकाशित करने वाला (सूनरी,

आयती) सुन्दर प्रकाश को विस्तृत आकाश में (उच्छंती) फैलाकर (अपो) जलों द्वारा सब दुःखों को दूर करता है ॥१॥

भावार्थः—दिव्यशक्तिसम्पन्न परमात्मा अपने अनन्त सामर्थ्य से उषादि ज्योतियों का विकाश करता हुआ संसार के अंधकार को दूर करता और विज्ञानी लोगों के लिए अपने प्रभूत ज्ञान का प्रकाश करता है, वही अपनी दिव्य शक्ति से वृष्टि द्वारा संसार का भरण-पोषण करता और वही सबको स्थिति देने वाला है ॥१॥

उदुस्त्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥२॥

पदार्थः—(सूर्यः) सब का उत्पन्न करने वाला परमात्मा (उस्त्रियाः, सृजते) तेजोमंडल को रचता (उत्) और (सचा) साथ ही (नक्षत्रं) नक्षत्रों को (उत् यत्) उत्पन्न करता हुआ (अर्चिवत्) प्रकाशित करता है (तव, इत्, उषः) तुम्हारा वही तेज (व्युषि) हमको प्रकाशित करे, ताकि हम (सूर्यस्य) स्वतःप्रकाश आपको (सं, भक्तेन) भले प्रकार श्रद्धापूर्वक (गमेमहि) प्राप्त हों ॥२॥

भावार्थः—हे सबको उत्पन्न करने वाले परमात्मन् ! आपका तेजोमयस्वरूप जो सूर्य चन्द्रादि लोकों को प्रकाशित कर रहा है वह हमको भी ज्ञान से प्रकाशित करे ताकि हम आपको भक्तिभाव से प्राप्त हों अर्थात् हम लोग सदैव आपके ही स्वरूप का चिन्तन करते हुए अपने जीवन को पवित्र करें ॥२॥

प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि ।
या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ॥३॥

पदार्थः—(वनन्वति) हे सर्वभजनीय परमात्मन् ! (दिवः, दुहितः, उषः) द्युलोक की दुहिता उषा के द्वारा (जीराः) शीघ्र ही (त्वा, प्रति) आपको (अभुत्स्महि) भले प्रकार जानें, और (या) जो आप (पुरु, स्पार्हं, वहसि) बहुत धन सबको प्राप्त कराते और (दाशुषे) यजमान के लिए (रत्नं) रत्न (मयः) सुख देते हैं (न) उसीके समान हमें भी प्रदान करें ॥३॥

भावार्थः—हे ज्योतिःस्वरूप परमात्मदेव ! आप ऐसी कृपा करें कि हम उषाकाल में अनुष्ठान करते हुए आपके समीपी हों, आप ही सब सांसारिक रत्नादि ऐश्वर्य तथा आत्मसुख देनेवाले हैं, कृपा करके हमको भी अपने प्रिय यजमानों के समान अभ्युदय और निश्श्रेयसरूप दोनों प्रकार के सुखों को प्राप्त करायें । [यहां मंत्र में "मयः" शब्द से आध्यात्मिक आनन्द का ग्रहण है, जैसाकि "नमः शम्भवाय च मयोभवाय च" इत्यादि मंत्रों में वर्णन किया है, इसी आनन्द की यहां परमात्मा से प्रार्थना की गई है] ॥३॥

(१५७) उच्छंती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाजं ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥४॥

पदार्थः—(देवि) हे दिव्यस्वरूप परमात्मन्, (दृशे) विज्ञानियों के ज्ञान-गोचर (या) जो आप (स्वः, प्रख्यै) अपनी ख्याति के लिये (मंहना) स्वमहिमा से (महि, कृणोषि) जगत् को रचकर (उच्छंती) अज्ञानरूप अंधकार का नाश करके अपने तेजोमय ज्ञान का प्रकाश करते हो (वयं) हम लोग (मातुः) माता के (सूनवः) बच्चों के (न) समान (स्याम) हों, और (तस्याः) पूर्वोक्तगुण-सम्पन्न (ते) तुम्हारी (ईमहे) उपासना करते हुए (रत्नभाजः) रत्नों के पात्र बनें ॥४॥

भावार्थः—हे परमपिता परमात्मन् ! आपको ज्ञान द्वारा विज्ञानी पुरुष ही उपलब्ध कर सकते हैं साधारण पुरुष नहीं । हे दिव्यस्वरूप भगवन् ! आप हमारे ज्ञानार्थ ही अपनी अपूर्व सामर्थ्य से इस जगत् की रचना करते हैं, आप माता के समान हम पर प्यार करते हुए हमारी सब प्रकार से रक्षा करें और हमें ज्ञानसम्पन्न करके अपनी उपासना का अधिकारी बनावें ताकि हम आपके अनुग्रह से धनधान्य से भरपूर हों ॥४॥

(१५८) तच्चित्रं राध आ भरोषो यद्दीर्घश्रुत्तमम् ।
यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद्रास्व भुनजामहै ॥५॥

पदार्थः—(उषः) हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् (यत्) जो (दीर्घश्रुत्तमं) घोर अन्धकाररूप अज्ञान है (तत्) उसको आप दूर करके (चित्रं, रायः, आ, भर) नाना प्रकार का उत्तम धन प्रदान करें, और (यत्) जो (ते) तुम्हारा (दिवः दुहितः) दूर देशों में हित करने वाला सामर्थ्य है उससे (मर्तं भोजनं) मनुष्यों का भोजनरूप धन (रास्व) दीजिये ताकि (तत्) वह (भुनजामहै) हमारे उपभोग में आवे ॥५॥

भावार्थः—हे परमात्मन् ! आप महामोहरूप घोर अज्ञान का नाश करके हमें उत्तम ज्ञान की प्राप्ति करायें जिससे हम अपने भरण-पोषण के लिए धन उपलब्ध कर सकें । हे भगवन् ! कोटानुकोटि ब्रह्माण्डों में आपका सामर्थ्य व्याप्त हो रहा है, आप हमारे पालनकर्ता और नाना प्रकार के ऐश्वर्यदाता हैं, कृपा करके हमारे भोजन के लिए अन्नादि धन दें ताकि हम आपकी उपासना में प्रवृत्त रहें ॥५॥

(१५९) श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः ।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः ॥६॥

पदार्थः—हे भगवन् (सूरिभ्यः श्रवः) विद्वानों के लिए यश, (अमृतं) अमृत (वसुत्वनं) उत्तम धन, तथा (वाजान्) नानाप्रकार के अन्न प्रदान करें, और (अस्मभ्यं) हमको (गोमतः) ज्ञान के साधन कलाकौशलादि (चोदयित्री) सबको प्रेरण करने वाली शक्ति (उषाः, मघोनः) उषा काल में यज्ञ करने का सामर्थ्य, और (सूनृतावती) उत्तम भाषण करने की शक्ति दें, और (अप, स्रिधः) हमसे संताप को (उच्छत्) दूर करें ॥६॥

भावार्थः—हे सर्वशक्तिसम्पन्न भगवन् ! आप शूरवीरों को वीरता रूप सामर्थ्य देने वाले, विज्ञानियों को विज्ञानरूप समार्थ्य देते, आप ही नानाप्रकार के अन्न तथा ज्ञान के साधन कलाकौशलादि के प्रदाता हैं, आप ही सब शोकों को दूर करके अमृत पद देने वाले हैं अर्थात् आप ही अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों प्रकार के उपभोग देते हैं ॥६॥

सप्तम मण्डल में इक्यासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

ऋग्वेदः मं० (८) सू० (४७)

(१६०) यच्च गोषु दुःष्वप्न्यं यच्चास्मे दुहितर्दिवः । त्रिताय तद्विभावर्याप्त्याय परा वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१४॥

पदार्थः—(दिवः दुहितः) हे दिवः कन्ये बुद्धे ! अथवा हे उषो देवि ! (यद् दुःष्वप्न्यम्) जो दुःस्वप्न (गोषु) इन्द्रियों में होता है अर्थात् इन्द्रियों के बारे में होता है और (यत् च) जो दुःस्वप्न (अस्मे) हमारे अन्य अवयवों के बारे में भी होता है, (विभावरि) हे प्रकाशमय देवि मते ! (तत्) उस सब दुःस्वप्न को (आप्त्याय त्रिताय) व्यापक जगत् के हेतु (परा वह) कहीं दूर फेंक दे । शेष पूर्ववत् ॥१४॥

भावार्थः—जागृत अवस्था में अनुभूत पदार्थ स्वप्न अवस्था में दृढ़ होते हैं । प्रातःकाल लोग अधिक सपने देखते हैं । अतः उषा देवी को सम्बोधित किया है । जैसे (दिवः दुहिता) प्रकाश की कन्या है बुद्धि क्योंकि उसी से आत्मा प्रकाशित है । अतः बुद्धि सम्बोधित हुई हैं । स्वप्न से किसी भी प्रकार डरना उचित नहीं अतः बुद्धि से आह्वान है कि स्वप्न को दूर करो ॥१४॥

(१६१) निष्कं वा घा कृणवते स्रजं दुहितर्दिवः । त्रिते दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१५॥

पदार्थः—(दिवः दुहितः) हे प्रकाश की कन्या बुद्धि देवि ! (वा) अथवा (निष्कम्) आभरण (कृणवते) धारण करने वाले (वा) या (स्रजम्) माला पहिनने वाले अर्थात् आनन्द के समय भी मुझे जो दुःस्वप्न प्राप्त होता है (तत् सर्वम् दुःष्वप्न्यम्) उस सब दुःस्वप्न को (आप्त्ये) व्याप्त (त्रिते) तीनों लोकों में

(परि दध्मसि) हम रखते हैं। अर्थात् दुःस्वप्न इस संसार में लुप्त हो जाय। शेष पूर्ववत् ॥१५॥

भावार्थः—बुद्धि के द्वारा विचार करना चाहिये कि स्वप्न क्या होते हैं ? जब सिर में गरमी पहुँचे तो नींद भली-भांति नहीं आती, उस समय लोग भांति-भांति के स्वप्न देखते हैं. इसलिये सिर को सदैव ठण्डा रखे। पेट सदा शुद्ध रखें। बल वीर्य्य से शरीर को नीरोग बनावें। व्यसनों में न फंसें। कोई भयंकर कार्य न करें। ऐसे उपायों से स्वप्न कम होंगे ॥१५॥

तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे। त्रिताय च द्विताय चोषो दुःष्वप्न्यं वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१६॥

पदार्थः—(उषः) हे देवि उषे ! हे प्रकाशदायिनी ! (तदन्नाय) उस अन्नवाले (तदपसे) उस कर्मवाले तथा (तम् भागम्) उस-उस भाग को (उपसेदुषे) प्राप्त करने वाले अर्थात् जाग्रत अवस्था में जो अन्न, जो कर्म और जो-जो भोग विलास करता है वे ही पदार्थ जिसे स्वप्न में भी प्राप्त हुए हैं ऐसा जो (त्रिताय) सारा संसार है और (द्विताय) प्रत्येक जीव है उस संसार व उस जीव को (दुःष्वप्न्यम्) जो दुःस्वप्न प्राप्त होता है उसे (वह) कहीं अन्यत्र ले जाय। यही मेरी प्रार्थना है ॥१६॥

भावार्थः—तीनों लोकों का एक नाम त्रित भी है, क्योंकि यह नीचे-ऊपर व मध्य इन तीनों स्थानों में व्याप्त हैं। द्वित=यह जीव का नाम इसलिये है कि इस लोक व परलोक से सम्बन्ध रखता है। अथवा शरीर में भी रहता है और इसे छोड़ अन्यत्र भी रहता है अतः उसे द्वित कहते हैं। अथवा कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों द्वारा इसका काम होता है अतः इसे द्वित कहते हैं।

मन्त्र का तात्पर्य यह है कि दुःस्वप्न से मानसिक व शारीरिक क्षति होती है। अतः शरीर को ऐसा नीरोग रखें कि उसे स्वप्न न हों। प्रातः का सम्बोधन इसलिये भी वारम्वार हुआ है कि उस समय शयन करना उचित नहीं। स्वप्न भी एक आश्चर्य-जनक मानसिक व्यापार है अतः इसका वर्णन वेद में है ॥१६॥

(९८३)

यथा कलां यथा शफं यथ ऋणं सन्नयामसि। एवा दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये सं नयामस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१७॥

पदार्थः—मानव (यथा) जैसे (कलाम्) अपनी अंगुली से मृत नख कटवा कर (संनयामसि) दूर फेंक देते हैं, (यथा शफम्) जैसे पशु के मृत खुर कटवा कर अलग कर दिए जाते हैं अथवा (यथा) जैसे (ऋणम्) ऋण को दूर करते हैं (एव) वैसे ही (आप्त्ये) विशाल संसार में जो (दुःस्वप्न्यम्) दुःस्वप्न मौजूद हैं (सर्वम्) उन सब को (संनयामसि) दूर कर देते हैं ॥१७॥

भावार्थः—परमात्मा से प्रार्थना करें कि वह स्वप्न न दिखाए, क्योंकि उससे हानि होती है। इसका तात्पर्य है कि अपने शरीर व मन को ऐसा स्वस्थ, शान्त, नीरोग व प्रसन्न बना रखे कि वह स्वप्न न देखे ॥१७॥

ऋग्वेदः मं० (८) सू० (४७)

(१६४) अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् । उषो यस्माद्दुःष्वप्न्याद-भैष्माप तदुच्छत्वनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१८॥

पदार्थः—हे मानवो ! (वयम्) हम सब परस्पर मिलकर (अद्य) आज-कल (अजैष्म) सारे विघ्नों, दुःखों व क्लेशों तथा मानसिक आधियों पर विजय पाएं । उसको जीतकर नाना भोग-विलास (असनाम) पाएं (च) और (अनागसः) निरपराध व निष्पाप (अभूम) होवें (उषः) हे उषा देवि । (यस्मात् दुःस्वप्न्यात्) जिस बुरे स्वप्न से (अभैष्म) हम डरें (तत्) वह पापस्वरूप बुरा स्वप्न (अप उच्छतु) दूर हो ॥१८॥

भावार्थः—इसका तात्पर्य यह है कि कल्पित अवस्तु वा संकल्पमात्र में स्थित पदार्थ पदार्थों से भयभीत न होकर और उनकी चिन्ता न कर हम मानव सारी आपत्तियों को दूर करने का प्रयास करें जिससे हम सुखी हों तथा ईश्वर की व मनुष्यों की सेवा कर सकें । हे मनुष्यो ! जिससे यह अपूर्व जीवन सार्थक व सफल तथा हितकारी हो ऐसी ही चेष्टा सदैव करें ॥१८॥

अष्टम मण्डल में सैंतालीसवां सूक्त समाप्त

ऋग्वेदः मं० (१०) सू० (१७२)

ऋषिः संवर्तः ॥ उषा देवताः ॥ छन्दः—पिपीलिकामध्या गायत्री ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

(१६५) आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥१॥

पदार्थः—हे उषा (वनसा सह आयाहि) तेज के साथ आओ (गावः) गौएं वा किरणें (वर्तनिम् सचन्त) घर का सेवन करें, घर में भर जायें (यत्) जो कि (ऊधभिः) दूध से वा जीवन से घर को भर दे ॥१॥

भावार्थः—उषा काल में व्यक्ति को अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं ॥१॥

(१६६) आ याहि वस्व्या धिया मंहिष्ठो जारयन्मखः सुदानुभिः ॥२॥

पदार्थः—हे उषा (वस्व्या धिया आयाहि) धन वाली बुद्धि के साथ वा बसाने योग्य कर्म के साथ (आयाहि) आओ (महिष्ठः) दानशील मनुष्य (सुदानुभिः) उत्तम दानों से (जारयत् मखः) यज्ञ को समाप्त करता हुआ हो ॥२॥

भावार्थः—उषा काल के उदय के साथ ही साथ दानशील यजमान को यज्ञ करना चाहिये ॥२॥

पितुभृतो न तन्तुमित्सुदानवः प्रति दध्मो यजामसि ॥३॥

पदार्थः—(पितुभृतः) पितरों का भरण-पोषण करने वाले (सुदानवः) उत्तम दानी जनों के (न) समान (तन्तुम् इत् प्रतिदध्मः) यज्ञ के तन्तु को या वंश के तन्तु को निश्चय धारण करें (यजामसि) यज्ञ करें ॥३॥

भावार्थः—उषाकाल में यज्ञ किया जाना नितान्त आवश्यक है ॥३॥

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ॥४॥३०॥

पदार्थः—(उषाः) उषायें (स्वसुः) अपनी बहिन रात्रि के (तमः) अंधेरे को (अपानयत) दूर करती है (सुजातता) शील आदि शुभ गुण (वर्तनिम्) घर में (सं वर्त्तयति) फैलाती है ॥४॥

भावार्थः—उषा रात्रि के अंधेरे को दूर कर चेतनता का सृजन करती है ॥४॥

इति त्रिंशो वर्गः ॥

उष इत्यस्य गोतम ऋषिः । उषर्देवता । निचृत्परोष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उषःकाल का वर्णन अगले मन्त्र में करते हैं—

(१५९) उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥३३॥

पदार्थ—हे (वाजिनीवति) बहुत अन्नादि ऐश्वर्यों से युक्त (उषः) प्रातः समय की वेला के तुल्य कान्तिसहित वर्त्तमान स्त्रि ! जैसे अधिकतर अन्नादि ऐश्वर्य की हेतु प्रातःकाल की वेला जिस प्रकार के (चित्रम्) आश्चर्य स्वरूप को धारण करती (तत्) वैसे रूप को तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (आ, भर) अच्छे प्रकार पुष्ट कर (येन) जिससे हम लोग (तोकम्) शीघ्र उत्पन्न हुए बालक (च) और (तनयम्) कुमारावस्था के लड़के को (च) भी (धामहे) धारण करें ॥३३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सब शोभा से युक्त मङ्गल देने वाली प्रभात समय की वेला सब व्यवहारों को धारण करने वाली है यदि वैसी स्त्रियां हों तो वे सदा अपने अपने पति को प्रसन्न कर पुत्रपौत्रादि के साथ आनन्द को प्राप्त होवें ॥३३॥

अश्वावतीरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । उषा देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्द । धैवतः स्वरः ॥

अब विदुषी स्त्रियाँ क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है—

(१६०) अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४०॥

पदार्थ—हे विदुषी स्त्रियो ! जैसे (अश्वावतीः) प्रशस्त व्याप्तिशील जलों वाली (गोमतीः) बहुत किरणों से युक्त (वीरवतीः) बहुत वीर पुरुषों से संयुक्त (भद्राः) कल्याणकारिणी (घृतम्) शुद्ध जल को (दुहानाः) पूर्ण करती हुई (विश्वतः) सब ओर से (प्रपीताः) प्रकर्षता से बढ़ी हुई (उषासः) प्रभातवेला हमारी (सदम्) सभा को प्राप्त होतीं अर्थात् प्रकाशित वा प्रवृत्त करती हैं वैसे हमारी सभा को आप लोग (उच्छन्तु) समाप्त करो और (नः) हमारी (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) स्वस्थता देने वाले सुखों से (सदा) सदा (पात) रक्षा करो ॥ ४० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्रभातवेला जागते हुए मनुष्यों को सुख देने वाली होती है वैसे विदुषी स्त्रियाँ कुमारी विद्यार्थिनी कन्याओं के विद्या सुशिक्षा और सौभाग्य को बढ़ा के सदैव इन कन्याओं को आनन्दित किया करें ॥ ४० ॥

(१—१०) १, २, ७, ८ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः, ३ अश्विनौ वैवस्वतौ, ४ प्रस्कण्वः काण्वः ५ मेधातिथि:-मेध्यातिथी काण्वौ; ६ नृमेध आंगिरसः, १० नोधाः गौतमः ॥ इन्द्रः १; उषा २; ३ (ऋ० ४) अश्विनौ ॥ बृहती ॥

७६१

१ २ ३ २ ३ २ ३ २ ३ २
३०३— प्रत्यु अदर्श्यायत्यू३च्छन्ती दुहिता दिवः ।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१॥

(दिवः) द्युलोक की (दुहिता) पुत्री अर्थात् उषा के समान वर्तमान "ज्योतिष्मती" आध्यात्मिक चित्त वृत्ति को मैंने (प्रति, उ) प्रत्यक्ष (अदर्शि) दर्शन कर लिया है। यह ज्योतिष्मती—चित्तवृत्ति (आयती) आती हुई (उच्छन्ती) मेरे अज्ञानान्धकार को दूर कर रही है यह मेरे (दिवः, दुहिता) मस्तिष्क से प्रकट हुई है। (मही) ज्योतिष्मती चित्तवृत्ति महाशक्ति है। इसने मुझे, (चक्षुषा) दिव्य-चक्षु देकर मेरे (तमः) अज्ञानान्धकार के पर्दे को (अप, उ, वृणुते) हटा दिया है। इसने मेरे भीतर (ज्योतिः) ज्योतिः (कृणोति) पैदा कर दी है, यह (सूनरी) ज्योति प्रियरूपा ऋतरूपा है, ऋतम्भरा प्रज्ञा का पूर्वरूप है।

[ज्योतिः="मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्" (योग ३।३२); तथा "ऋतम्भरा प्रज्ञा" (योग १।४९)]

७६२

१२ ३ १ २ २ १ २र
३६७—वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि ।
२ ३ १२ ३ १ २र ३ १ २र ३ १ २
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ८ ॥

(अर्जुनि) हे धर्मोपार्जन में प्रेरणा देने वाली तथा शुभ्र प्रकाशमयी (उषः) उषा ! जब तू (दिवः) द्युलोक के (अन्तेभ्यः) प्रान्त-भागों से आकर, (परि) चारों ओर फैलती है, तदनन्तर (ऋतून् अनु) ऋतु अनुसार, (ते) वे (वयः) उड़ने वाले (पतत्रिणः) पक्षी (चित्) और (द्विपात् चतुष्पात्) दुपाए तथा चौपाए (प्रारन्) अपने अपने कर्मों को प्रारम्भ करते हैं।

[इस मंत्र में उपासक, उषा की चमक में, परमेश्वर की विभूति को अनुभव कर रहा है। प्रारन्=प्र+ऋ (अर्) गतौ।]

७६३

२ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३ २ ३ १ २
१७२५—प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः ।
३ १ २ ३ २
दिवो अदर्शि दुहिता ॥ १ ॥

(सूनरी) प्रेरणाओं के प्रदान में अग्रणी, (जनी) उपासक को नवजीवन प्रदान करने वाली, (व्युच्छन्ती) अज्ञानान्धकार को दूर कर ज्ञान-प्रकाश देने वाली, (परि स्वसुः) अविद्याजन्य रागद्वेष आदि का पूर्ण निराकरण करने वाली, (दिवः) मूर्धा या सिर से (दुहिता) प्रकट हुई (स्या) वह आध्यात्मिक-ज्योति (अति अदर्शि) दीख पड़ी है।

[सूनरी=सू (प्रेरणा+नृ (नये)। स्वसुः=सु+अस् (प्रक्षेपणे)। दिवः ="दिवं यश्चक्रे मूर्धानम्" (अथर्व १०।७।३२) तथा "शीर्ष्णो: द्यौः समवर्त्तत" (यजु० ३१।१३)। तथा मूर्द्ध ज्योतिषि सिद्ध दर्शनम्" (योग० ३।३२)]

१ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ २

(७६४) १७२६—अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी।

१ २ ३ १ २ ३ २

सखा भूदश्विनोरुषाः ॥ २ ॥

(उषाः) वह आध्यात्मिक-उषा अर्थात् मूर्द्ध-ज्योति (अश्व इव चित्रा) पूर्व दिशा में व्याप्त उषा के सदृश विचित्र स्वरूप वाली है, (अरुषी) चमकीली, (गवाम् माता) प्रकाशों की जननी, (ऋतावरी) तथा सत्यमार्ग दर्शाती है। तथा (अश्विनाः) अश्वियों की (सखा) सखी है।

[अश्वा=अशूङ् व्याप्तौ। अश्विनो;=निरुक्त १२।१।१-५) में अश्वियों का काल मध्यरात्री के उपरान्त, रात्री के तमस् में प्रकाश के अनु प्रवेश से लेकर सूर्योदय पर्यन्त कहा है। साथ ही यह भी कहा है कि योगाभ्यास के लिये यह काल अत्यन्त उपयोगी है। ऋग्वेद में कहा है कि "पूर्वः पूर्वः यजमानो वनीयान्" (ऋ० ५।७७।२); अर्थात् इस अश्विकाल में जो उपासक जितना पहिले उपासना में रत हो जाता है वह उपासना का फल शीघ्र पाता है। आधिदैविक-उषा का काल सूर्योदय से कुछ पूर्व होता है। सूर्योदय काल से पूर्व प्रकट मूर्द्ध ज्योति को, इस दृष्टि से उषा से उपमित किया है। इसलिये यह मूर्द्धज्योति अश्वियों की सखी है।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २र

(७६५) १७२७—उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि।

१ २ ३ १ २

उतोषो वस्व ईशिषे ॥ ३ ॥ ॥६(लि)॥

(उत) तथा (उषः) हे मूर्द्धज्योति! तू (अश्विनोः) अश्वियों की (सखा असि) सखी है, (उत) और (गवाम्) प्रकाशों अर्थात् आध्यात्मिक-प्रकाशों की (माता असि) माता है; (उत) और (वस्वः) आध्यात्मिक-सम्पत्तियों की (ईशिषे) अधीश्वरी है, स्वामिनी है।

[देखो मन्त्र १७२६]

[घा० ६। उ० नास्ति। स्व० ३]

सूक्त ७

१ २ ३ १ २र २क २र ३ २ ३ २
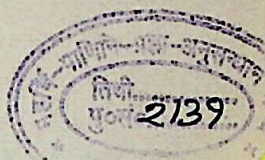
१७२८—एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः।

३ १ २ ३ १

स्तुषे वामश्विना वृहत् ॥ १ ॥

(एषा उ) यह ही (उषाः) आध्यात्मिक-उषा अर्थात् मूर्द्ध-ज्योति (अपूर्व्या) एक अपूर्व-ज्योति है, (प्रिया) यह प्रियरूप वाली है, (दिवः) मूर्द्धा या मस्तिष्क से प्रकट होकर इसने (व्युच्छति) मेरी अज्ञानी-रात्री को हरा दिया है। मैं इस सम्बन्ध में (वाम् अश्विना) तुम दो अश्वियों के गुणों का (वृहत् स्तुषे) महागान करता हूँ, इनके गुणों का प्रभूत कथन करता हूँ।

[मध्य रात्री के उपरान्त, जब रात्री के अन्धकार में आदित्य के प्रकाश का अनुप्रवेश होता है, तो अश्विकाल प्रारम्भ होता है। यह समय शान्त होता है। इस काल में ध्यान करना उत्तम माना गया है। इसलिए यह काल प्रशंसित है]

२ ३ २ ३ १ २र ३ १ १

१७३१—उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति।

१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २

येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ १ ॥

(वाजिनीवति) शक्तिदायिनी-प्राकृतिक उषा के सदृश शक्तिदायिनी (उषः) हे आध्यात्मिक-उषा! अर्थात् मूर्द्धज्योति!, तू (तत्) वह प्रसिद्ध (चित्रम्) अद्भुत स्वरूप आध्यात्मिक-धन (अस्यस्यम्) हम उपासकों को (आ भर) प्रदान कर, (येन) जिस द्वारा कि हम (तोकं च) पुत्रों और (तनयं च) पौत्रों का भी, आध्यात्मिक दृष्टि से, (धामहे) परिपोषण कर सकें।

१ २ ३ १ ३२ ३ १ २

१७३२—उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि।

३ २ ३ १ २

रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥ २ ॥

(गोमति) इन्द्रियों को प्रशस्त बनाने वाली!, (अश्वावति) मन को प्रशस्त बनाने वाली!, (विभावरि) विशिष्ट प्रभा वाली!, (सूनृतावति) वाणी को प्रिय-तथा-सत्य बनाने वाली! (उषः) हे आध्यात्मिक-उषा! मूर्द्धज्योति या ज्योतिष्मती प्रवृत्ति! (इह) इन हम उपासकों के जीवनों में, (अद्य) आज से ही, (अस्मे) हमारे लिये, (रेवत्) आध्यात्मिक-धन प्रदान करती हुई तू (व्युच्छ) हमारे अज्ञानान्धकारों को दूर कर।

३ १ २र ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१८९) १७३३—युंक्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।
१ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ २
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥ ३ ॥ ॥८(हि) ॥

(वाजिनीवति) शक्तिदायिनी-प्राकृतिक उषा के सदृश शक्तिदायिनी (उषः) हे आध्यात्मिक-उषा अर्थात् मूर्द्ध-ज्योति ! तू (अरुणान्) रजोगुणी हमारे (अश्वान्) मनों को (अद्य) आज से (हि) ही (युंक्ष्व) योगयुक्त कर दे, निरोधावस्था से सम्पन्न कर दे। (अथा) और तदनन्तर (विश्वा सौभगानि) सभी आध्यात्मिक सौभाग्य (नः) हमें (आ वह) प्राप्त करा।

[अरुणान्=अरुण का अर्थ है "लाल"। रजोगुण को उपनिषदों में लोहित अर्थात् लाल कहा है। यथा:—"अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णाम्" (श्वेता० उप० ४।५)। लोहित=रजोगुण; शुक्ल=सत्वगुण; कृष्ण=तमोगुण। अजा=उत्पत्ति-रहित प्रकृति।

३ १ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २
(१९०) १७४०—महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती।
१ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २र ३ १ १
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥ १ ॥

(उषः) हे आध्यात्मिक-उषा अर्थात् ज्योतिष्मती प्रज्ञा ! या मूर्द्ध ज्योति ! तू (दिवित्मती) दिव्य प्रकाश वाली है, (महे राये) महा-आत्मिक सम्पत्ति की प्राप्ति के लिये, (नः) हमें (अद्य) आज (बोधय) प्रबोधयुक्त कर, (यथाचित्) जैसे कि तू (नः) हम उपासकों को अनादि काल से (अबोधयः) प्रबोधयुक्त करती रही है। (अश्व सूनृते) हे व्यापक-सत्य और व्यापक-प्रेम का मार्ग दिखाने वाली, तथा (सुजाते) हे सौभाग्य से उत्पन्न हुई आध्यात्मिक-उषा !; (सत्यश्रवसि) सत्यव्यवहारों के सम्बन्ध में कीर्त्तिसम्पन्न, तथा (वाय्ये) आध्यात्मिक-कर्म पट के बुनने वाले मुक्त उपासक में भी तू प्रबोध प्रकट कर।

[दिवित्मती=दिव् (प्रकाश)+इत्+मती ?]

(१८१) केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोद् रुचे ।
उषसं केनान्वैन्द्ध केनं सायंभवं ददे ॥१६॥

(केन) किस कारण (आपः) सामुद्रिक जलों को (अनु अतनुत) लगातार फैलाया है, (केन) किस कारण (रुचे) दीप्ति के लिये (अहः) दिन को (अकरोत्) रचा है। (केन) किस कारण (उषसम्) उषा को (अनु ऐन्द्ध) लगातार प्रदीप्त किया है, (केन) किस कारण (सायंभवम्) सायं काल का होना (ददे) प्रदान किया है।

[मन्त्र के द्वितीय पाद में दिन की रचना का कारण कह दिया है कि "रुचे" दीप्ति के लिये। इसी प्रकार अवशिष्ट रचनाओं के प्रयोजनों का ऊहापोह स्वयं करना चाहिये। सम्भवतः सामुद्रिक जलों को फैलाया है सामुद्रिक जीवों के जीवनार्थ तथा वर्षा के लिये। उषा तथा सायंकाल हैं, दोनों कालों में ध्यान या सन्ध्या के लिये। केन=केन हेतुना, कारणेन। अथवा "दीप्ति के लिये दिन को रचा है" ताकि प्राणी काम कर सकें]।

अथर्ववेद-भाष्य का०२०। सू० १५

(१८२) अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥३॥

हे उपासक! (अध्वरे) हिंसारहित उपासना-यज्ञ में, तू (भीमाय) कठोर न्याय की दृष्टि से भयानक, परन्तु (पनीयसे) न्यायवज्र के हितकर और रमणीय होने के कारण स्तुति-योग्य (अस्मै) इस परमेश्वर के प्रति, (नमसा) नमस्कारों द्वारा (सम्) सम्यक्रूप में (आ भर) भक्तिरस समर्पित कर। (न) जैसे कि (उषाः) उषा (शुभ्रे) दिन के शुभ्र हो जाने पर सूर्य के निमित्त आत्मसमर्पण कर देती है। (नामं) सब को नमानेवाला (अस्य) जिस परमेश्वर का (इन्द्रियं धाम) परमेश्वरीय निज तेज (श्रवसे) श्रवण योग्य है, विश्रुत है। उसने हम उपासकों में (ज्योतिः) एक दिव्य ज्योति (अकारि) प्रकट कर दी है। (न) जैसे कि (हरितः) अन्धकार का हरण करनेवाली सूर्यकिरणें (अयसे) आते समय (ज्योतिः) उषारूपी ज्योति प्रकट कर देती हैं।

[शुभ्रे=उषा सूर्य से प्रथम आती है, और सूर्य पीछे आता है। जब सूर्य आ गया तब उषा मिट गई। मानो उषा ने सूर्य के प्रति आत्मसमर्पण

कर दिया। जब तक आकाश लाल रहता है, तब तक उषा रहती है। सूर्य के आ जाने पर जब दिन शुभ्र हो जाता है, तब उषा अपने स्वरूप से मिट जाती है। मानो उसने सूर्य के प्रति आत्मसमर्पण कर दिया है।]

का० २०। सू० १४२

यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥३॥

(उषः) हे उषा ! तू (सूर्येण) सूर्य के कारण (सम् रोचसे) अति रोचक रूप धारण करती है। (यद्) जब तू (भानुना) अपनी प्रभा के साथ (यासि) चली जाती है, तब (नृपाय्यम्) प्रजावर्ग के खान-पान तथा रक्षा को लक्ष्य करके, (ह) निश्चय से, (अश्विनोः) दोनों अश्वियों का (अयम) यह (रथः) अपना-अपना रथ (आ याति) प्रजावर्ग के कार्यों के निरीक्षणार्थ आता है, और (वर्तिः) मार्ग, या वर्तन-वर्ताव, अर्थात् व्यापार और उद्योग-धन्धे (याति) चलने लगते हैं।